वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो?

लेखक :

वेदों के दीवाने, ऋषि दयानन्द के परमभक्त, शतपथ ब्राह्मण के अद्भुत व्याख्याता

विद्यामार्तण्ड **पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार (स्वामी समर्पणानन्द जी)**

झोले में चारों वेद लिए हुए।

वेदों के सम्बन्ध में ...

क्या भूलो?

वेदार्थ को जानने में बाधक तीन वाद

क्या जानों!

वेदार्थ के प्रकाशक तीन वाद

• **वेदों के सम्वन्ध में क्या जानों, क्या भूलो**

विद्यामार्तण्ड पण्डित वुद्धदेव विद्यालङ्कार (स्वामी समर्पणानन्द जी)

• प्रकाशक :

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान

गुरुकुल प्रभात आश्रम, भोला की झाल, मेरठ- 250501

• मूल्य : दस रुपये मात्र

विदेश

प्रास्ताविकं किञ्चित्

जब ऋषि दयानन्द ने विश्व मञ्च पर **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'** इसकी उद्घोषणा की उस समय अन्यों की बात छोड़िये, स्वयं जो वेद को परमेश्वर द्वारा प्रदत्त सनातन ज्ञान मानते थे, उनके दल में भी कानाफूसी होने लगी और वे महर्षि की इस उद्घोषणा को अतिशयोक्तिपूर्ण समझने लगे थे। कालान्तर में वेदज्ञान के प्रति अनन्य निष्ठा वाले योगी अरविन्द से उनके किसी जिज्ञासु शिष्य के द्वारा शंकारूप में यह पूछने पर कि स्वामी दयानन्द ने वेद के सम्बन्ध में जो यह **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'** कहा है, क्या उपयुक्त है? तब अरविन्द ने उस जिज्ञासु से कहा कि स्वामी दयानन्द ने वेद के सम्बन्ध में जो कहा है, वह अतिशयोक्ति नहीं, अपितु वेद ज्ञान के प्रति कुछ न्यून करके ही कहा है।

वास्तव में वेद के सम्बन्ध में जो ऋषि दयानन्द ने कहा है, वह कथन उनका नहीं, अपितु मनु का है, जो मनु ने वेद के सम्बन्ध में -

सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति। (मनुस्मृति - १२/८३)
सर्वज्ञानमयो हि सः। (मनुस्मृति - २/७)

कहा है और इसी बात को महर्षि व्यास ने महाभारत में भी इन शब्दों में कहा है-

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः॥ (महाभारत)

ऋषि दयानन्द का कथन उपरोक्त मनु एवं व्यास के कथन का अनुवाद मात्र है।

सनातन परम्परा वेद को सभी विद्याओं का स्रोत मानती है। धार्मिक कर्मकाण्डों ही नहीं, अपितु नाट्यशास्त्र, आयुर्वेद, व्याकरण आदि से लेकर विमानशास्त्र के सभी लेखकों ने अपने शास्त्रों का उत्स एक ही स्वर से वेदों को ही स्वीकार किया है। मानव धर्म के व्यापक उपदेष्टा मनु के उपदेश का आधार ही वेद है।

ऋषि दयानन्द ने अपनी उस प्रतिज्ञा **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'** को ध्यान में रखकर ही वेद का भाष्य किया। इसीलिये उनके भाष्यों में सामान्य व्यवहार की बातों से लेकर भौतिक ज्ञान-विज्ञान तथा

आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान का समावेश है। किसी भी क्षेत्र में मनुष्य के लिये क्या करणीय तथा क्या अकरणीय है, इस अलौकिक उपाय को जो ग्रन्थ बताता है, वही वेद है, किन्तु उसको समझने के लिये आर्षबुद्धि से युक्त होना या आर्ष-परम्परा की चिन्तन विधा से युक्त होना आवश्यक है। इस आर्ष-परम्परा के चिन्तन में एवं वेदार्थ को स्पष्ट करने में वेद के मर्मज्ञ विद्वान् पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी के द्वारा लिखा यह लघु निबन्ध **'वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो'** अति सहायक है और मैं तो यह समझता हूँ कि यदि कोई भी वेद ज्ञान के प्रति जिज्ञासा रखने वाला व्यक्ति हो, तो यह लेख उसके लिये प्रकाशस्तम्भ बनेगा, जिसके प्रकाश में वेद के गुह्य ज्ञान का उसे हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जायेगा।

इस निबन्ध में श्री स्वामी जी ने वेदार्थ को जानने में तीन वादों को बाधक एवं तीन वादों को वेदार्थ का प्रकाशक सिद्ध किया है, जो विकासवाद, अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद, विनियोगवाद, यौगिकवाद, समकक्षवाद और विज्ञाताश्रयवाद हैं। इनमें से क्रमशः तीन विकासवाद, अदृष्टवाद तथा विनियोगवाद वेदार्थ में बाधक तथा यौगिकवाद, समकक्षवाद तथा विज्ञाताश्रयवाद ये वेदार्थ में सहायक हैं। ऐसा उन्होंने युक्ति एवं प्रमाणपूर्वक प्रतिपादित किया है। इसका विस्तृत विवेचन तो उनके इस लेख में ही जिज्ञासुओं को देखना चाहिए, किन्तु संकेत के लिये यहाँ पर मैं स्थालीपुलाकन्याय से विवेचन करूँगा।

जैसे हम रूढिवाद और यौगिकवाद की तुलना करें तो रूढिवाद प्रक्रिया के द्वारा किया हुआ वेदार्थ जहाँ उपाहासास्पद प्रतीत होता है, वहीं यौगिकवाद के द्वारा वह अर्थ अत्यन्त उदात्त, व्यावहारिक एवं उपदेशात्मक प्रतीत होता है। जैसे यजुर्वेद के ३६वें अध्याय के १२वें मन्त्र में एक शब्द आया है- **'मनोरश्वासि'**। रूढिवाद, विनियोगवाद के अनुसार महीधर मन्त्रार्थ को पृथ्वी के साथ में विनियुक्त कर अर्थ करते हैं - 'तू राजा की घोड़ी है।' किन्तु यौगिकवाद का आश्रय लेकर (जिस वाद का आश्रय प्राचीन आचार्यों से लेकर यास्क, पतञ्जलि, कहीं-कहीं सायण ने भी मन्त्रार्थ किया है, जो वेद के महत्त्व को दर्शाता है) उस सरणि पर चलते हुए ऋषि दयानन्द ने पत्नीपरक अर्थ करते हुए पति के द्वारा यह कहते हुए दिखलाया है- हे पत्नी! मेरा धर्म है कि मेरे रहते कोई तेरी ओर आँख न उठा सके तथा और भी पत्नी के विशिष्ट गुणों का उल्लेख करते हुए मन्त्रान्त में **'मनोरश्वासि'**

का अर्थ **'अन्तःकरणस्य व्यापिका भवसि'** यह किया है। भावार्थ में इसको और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है - तू मेरे मन में इस प्रकार व्याप्त हो जाती है कि किसी दुराचारिणी के लिये उसमें स्थान ही नहीं रहता है। आप स्वयं देखें कि एक ओर यौगिकवाद के आश्रय के द्वारा वेद ज्ञान के निधि बनें, दूसरी ओर रूढिवाद, विनियोगवाद का आश्रय लेने से उपहासास्पद बनें।

इसी प्रकार यदि हम अग्नि का अर्थ रूढि लेते हैं तो सामान्य दैनिक कार्यों के संपादन के लिये उपयोगी विशेषकर भोजन, प्रज्ज्वलन आदि वहीं तक यह अर्थ सीमित रहता है। किन्तु जब **'अग्नि अग्रणी भवति', 'अग्रे नयति'** आदि अर्थों का सहारा लेते हैं, तो इसका अर्थ व्यापक हो जाता है। किसी भी दिशा में जो मनुष्य को आगे ले जाता है या गति प्रदान करता है, वह सभी पदार्थ अग्नि पदवाच्य हो सकता है या अग्नि पदवाच्य है। वेद मन्त्रांश का यह भाग **'अग्निर्हिमस्य भेषजम्'** यदि हम केवल मात्र रूढिप्रक्रिया के अनुसार मन्त्रार्थ को समझने का प्रयास करेंगे तो केवल इतना ही अर्थ होगा कि जिसको ठण्ड लग रही हो, वह अग्नि सेवन करे, तो उसका शैत्य दूर हो जायेगा। किन्तु यौगिक अर्थ के अनुसार जहाँ भी प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो गया है, वहाँ अग्नि तुल्य गति देने वाले विचारों का, उपदेशों का, उत्साह भी अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। जैसे सर्वथा हताश, निराश शीतवत् गतिशून्य व्यक्ति के लिये उत्साहपूर्ण प्रेरणाप्रद विचार उसके समस्त जड़त्व को दूरकर उसमें नयी गति प्रदान करते हैं। इस प्रकार का अर्थ व्यापक होता है और मनु के **'सर्वज्ञानमयो हि सः'** कथन की पुष्टि करता है।

समकक्षवाद भी वेदार्थ में सहायक होता है, जिस प्रकार से लोक में बहुत सी बातें प्रचलित होती हैं, जिनका उक्त प्रसंग से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता है, किन्तु व्यवहार में वह इतना प्रचलित होता है कि व्याकरणादिशास्त्र ज्ञानशून्य व्यक्ति भी उसको सरलतया हृदयंगम कर लेता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने मित्र से या सहधर्मी से कहता है कि अरे भाई! चलो, विलम्ब मत करो, तब उसका मित्र कहता है - हाँ, चलता हूँ, थोड़ा पेट्रोल तो पेट में डाल लूँ। अन्यथा गाड़ी कैसे चलेगी? सुनने वाला कहता है कि अच्छा शीघ्र करो। दोनों ही पेट्रोल का अर्थ जो उस समय होता है, उसको अनायास ही समझ जाते हैं कि यहाँ पेट्रोल का अर्थ गाड़ी में चलने वाला पेट्रोल नहीं, अपितु मनुष्य का शक्तिदायक वह पदार्थ है, जिसके सेवन

करने से निर्बाध रूप से वह अपनी यात्रा पूरी करेगा। अर्थात् पेट्रोल का अर्थ यहाँ रोटी, दाल, शाक, चावल, खीर, दूध, दही आदि पदार्थ हैं, जो उसको शक्ति दे रहे हैं, सभी पेट्रोल शब्द वाच्य हो जायेंगे। दूसरे दिन यदि कोई अपने भृत्यों को कार्य के लिये कहता है, तो यदि कर्मकरों ने भोजन नहीं किया हो और वे भूखे हों तो वे कहते हैं कि बिना दाना-चारा के किस प्रकार से भूखे हम कार्य कर सकेंगे? स्वामी समझ जाता है कि वे भूखे हैं और वह उनके योग्य भोजन की व्यवस्था करता है। वहाँ दाना-चारा का यह अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता- भूसा, चोकर, चूरी, खल, बिनौला आदि। समकक्षवाद का आश्रय लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके अन्दर ऊर्जा प्रदान करने वाली क्या है और वह भिन्न होते हुए भी एक शब्द से अभिहित की जा सकती है।

विनियोगवाद के सम्बन्ध में भी स्वामी जी बड़ा स्पष्ट चिन्तन है- विनियुज्यते इति विनियोगः इस रूढि अर्थ पर न रुककर, विनियोग का जो वास्तविक अर्थ होना चाहिए, वही अर्थ करते हैं - **'अन्यत्र उपात्तानां शब्दानां वाक्यानां च यथास्थानं उपयोगो विनियोगः।'** (शतपथ ब्राह्मण) जैसे कोई वाक्य किसी प्रकरण में कहा गया है, अब ठीक उसी प्रकार का प्रकरण उपस्थित होने पर उस वाक्य का प्रयोग कर देना वास्तविक विनियोग है।

राष्ट्ररक्षा का समय हो और सैनिक युद्ध में जा रहें हों, तो उनके लिये गीता (गीता-२/२७) का यह वाक्य - **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।** कितना सार्थक होगा और उत्साहवर्धक भी, किन्तु यदि यही वाक्य विवाहोपरान्त कन्या के विदाई के समय कोई व्यक्ति कहे, तो कितना उपहसनीय होगा, यह विज्ञ लोग जानते हैं।

इस प्रकार से वेद के अनेक स्थलों की व्याख्या यौगिकवाद, विज्ञाताश्रयवाद और समकक्षवाद के द्वारा सुलझ जाती है। वेद के जो मन्त्र या मन्त्रांश हमें अश्लील ऊँटपटांग, या बुद्धिगम्य प्रतीत नहीं होते, वही ज्ञान से परिपूर्ण प्रतिभासित होने लगते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया का चिन्तन ऋषि दयानन्द का अपना नहीं था, क्योंकि उन्होंने मन्त्रार्थ करने की इस विधा का श्रेय अपने से प्राचीन महर्षियों को दिया है, जिन्होंने शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में उसको सूक्ष्म, किन्तु अतिस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है। यथा एक ही पदार्थ को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करना। जैसे यज्ञ शब्द है या यज्ञ जो

अभिधेय है, उसको विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है - **यज्ञो वै विष्णुः** यज्ञ ही विष्णु है, यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है, यज्ञ प्रजापति है, यज्ञ पुरुष है, यज्ञ संवत्सर है। इस प्रकार की अनेक उद्भावनाएँ यज्ञ शब्द के व्यापक अर्थ को अभिव्यापक करती है। सामान्य पाठक इस प्रकार की शब्दावली के मध्य अपने को पाकर भटक सा जाता है और वह यह सोचने लगता है कि यह क्या मामला है कि यज्ञ ही सब कुछ है, तो फिर अर्थ का निश्चय कैसे किया जाये?

इसी से मिलती-जुलती पद्धति दूसरे रूप में निरुक्त में भी हमें प्राप्त होती है, जहाँ वे किसी एक ही शब्द को विभिन्न धात्वर्थों से युक्त पाते हैं या विभिन्न अर्थों का समावेश करते हैं। जैसे देव शब्द है, उसको केवल 'दिव्' धातु के अर्थ से ही सम्बन्धित न मानकर वे कहते हैं - **'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।'** पाश्चात्य विद्वानों का यह आरोप रहता है कि यास्क स्वयं ही भ्रान्त हैं, इसीलिये वह किसी एक अर्थ पर दृढ़ नहीं है या वह किसी एक अर्थ का निश्चय नहीं कर पाते हैं। यद्यपि वहाँ आचार्य यास्क को वैदिक शब्दों के अर्थ की व्यापकता दिखाना अभीष्ट है, न कि संशय की उद्भावना करना। इस व्यापक अर्थ के कारण एक ही मन्त्र के प्रसंगानुसार अनेक संभावित अर्थ हुए, जो कि उनकी व्यापकता के उद्घोषक हैं, न कि अनिश्चयात्मकता के। जैसा कि कौत्स सदृश अन्य लोग समझते हैं। छान्दोग्योपनिषद् अध्याय दो में एक ही प्रकरण को समकक्षवाद की दृष्टि से अनेक रूपों में उद्भावित करना, उसकी अपनी विशेषता रही है।

प्रार्थना-उपासना के मन्त्रों में आये हविषा शब्द के चार अर्थ ऋषि दयानन्द ने विभिन्न प्रकरणों में किये हैं और उसके पढ़ने से यही प्रतीत होता है कि हविषा शब्द का यहाँ यही अर्थ उचित हो सकता है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

(ऋग्. ५/८२/५)

इस मन्त्र के सम्बन्ध में भी कुछ यही समझना चाहिए। यहाँ ईश्वरपरक अर्थ किया जाये, जो कि ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्यों में किया है, किन्तु उसका आधिभौतिक जगत् में सूर्य के रूप में भी अर्थ करना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। आध्यात्मिक अर्थ से आप सुपरिचित हैं। आधिभौतिक अर्थ में हम इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार कर सकते हैं कि सूर्य चिकित्सा के द्वारा मनुष्य के शारीरिक रोगों को दूर कर अर्थात् परा सुव शरीर में नयी

ऊर्जा प्रदान की जा सकती है, **यद् भद्रं तन्न आसुव।**

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
(ऋग्. १/११५/१)

यहाँ इस मन्त्र का आध्यात्मिक ईश्वरपरक यह अर्थ है कि ईश्वर सभी स्थावर जङ्गमों का आत्मा है। वहीं आधिभौतिक जगत् में आधिभौतिक सूर्य को लक्ष्य करके किया हुआ अर्थ भी भौतिक सूर्य सभी स्थावर जङ्गमों का प्राण है, आत्मा है अर्थात् सबको उसी के द्वारा ऊर्जा प्राप्त होती है। सूर्य के इसी महत्त्व को दर्शाते हुए वेद में एक स्थल पर कहा गया है - **प्राणः प्रजानामुदेति सूर्यः हिरण्ययेन सविता रथेन। देवो याति भुवनानि पश्यन्।**

सूर्य एवं सविता शब्द दोनों एकार्थक हैं और दोनों का मूल भी एक ही है - **षू प्रेरणे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचनयोः** (धातुपाठ) ये दोनों ही धात्वर्थ सविता और सूर्य में घटित होते हैं, इसीलिये शतपथ में कहा है - **सविता वै देवानां प्रसविता।** इसी प्रकार गौ, पृथिवी, धेनु, जल, अग्नि आदि शब्द अपने व्यापक अर्थों को समाविष्ट किये हुए हैं। इसीलिये द्यौ का अर्थ कहीं पति है, कहीं सूर्य है और कहीं आचार्य और पृथिवी का अर्थ स्त्री, पत्नी, ब्रह्मचारी आदि होते हैं।

यह वेद मन्त्रार्थ को समझने की एक अद्भुत पद्धति है, जिसको आधुनिक समय में ऋषि दयानन्द ने पकड़ा और उसी सूत्र को ध्यान में रखते हुए उसका बहुत स्पष्ट विश्लेषण स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने लघु निबन्ध **'वेदों के सम्बन्ध में क्या जानो और क्या भूलो'** में किया है, जो कि उनके चिन्तन की उच्चतम अवस्था कही जा सकती है, जो प्राचीन ऋषियों की चिन्तन परम्परा से सर्वथा अभिन्न है। आधुनिक (पाश्चात्य या पौरस्त्य) सभी विद्वानों के द्वारा एक बार इस निबन्ध का परायण कर लेने पर ही वेद का अध्ययन करने से बहुत सी शंकाओं, कुशंकाओं का जाल या भ्रम तिरोहित हो जायेगा। आशा है आधुनिक वेद विद्वत् मण्डल उस आर्ष परम्परा के अनुमोदक निबन्ध का अवलोकन, पठन और मनन अवश्य करेंगे।

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती
अध्यक्ष - वर्णाश्रम संघ
कुलाधिपति - गुरुकुल प्रभात आश्रम

॥ओ३म्॥

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः। प्रत्नवद् रोचया रुचः।

ऋग्वेद ९/ ९/ ८

तू प्रतिदिन नये और उससे भी नये सुभाषितों के लिये रास्ता बना और उस रास्ते को ऐसा रुचिकर बना जैसे तुझसे पहिले विद्वान् बनाते आये हैं।

साटोपं वादिवृन्दैरहमहमिकया सम्पतद्भिस्सलीलम्।
खेलन् मन्दस्मितामामयसुर सरितादत्तलोकाभिषेकः॥
छिद्रान्वेषेप्यलाभादुपहतमतिना वीक्षितश्चित्तजेन।
योगीन्द्रः कोऽपिचित्ते मम कृतवसतिः पापबुद्धि दुनोतु॥

वेदानुरागी सज्जनों!

शिष्टाचारानुसार सभापति पद प्राप्ति के लिये सभापति की ओर से सबको धन्यवाद दिया जाता है, कार्य की गतिविधि पर सिंहावलोकन किया जाता है, भविष्य के लिये कार्यक्रम सम्बन्धी सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं परन्तु मैं तो यह सब कार्य अपने अभिभाषण के अन्त में करूँगा सो भी अति संक्षेप से, इस समय तो शिष्ट मर्यादा व्यतिक्रम के लिये क्षमा याचना करके आगे बढ़ता हूँ।

मुझे धन्यवाद तथा गुणगान करना है परन्तु मैं गुणगान करता हूँ उस प्रभु का जिसकी कृपा से हम सब आज यहाँ इकट्ठे हुए हैं और गुणानुवाद करता हूँ उस ऋषि का जो उस प्रभु की कृपा का मूर्तिमान् फल था, धन्यवाद करता हूँ उस विशाल चट्टान का जिसने विश्व भर में बहते हुए वेद विरोधी प्रवाह को अपनी छाती पर झेलकर उसे एकदम उलटा कर दिया। धन्यवाद करता हूँ उसका जिसने उल्टे को उल्टा करके हमें सीधा मार्ग दिखाया। धन्यवाद करता हूँ उस विचित्र वास्तुविशारद् विश्वकर्मा का जिसने मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य रूपी विशाल भवन का इतना विशाल मानचित्र बनाया कि सौ वर्ष में तो उसकी नींव भी पूरी तरह उभरती दृष्टिगोचर नहीं हुई, भवन तो कब तैयार होगा। मैं तो इस मानचित्र पर ही मुग्ध हूँ भवन जब बनेगा तब वह क्या होगा

यह तो कल्पना के द्वारा ही आस्वादनीय है। हे प्रभु! मेरा यह सिर और ऐसे सहस्रों सिर इस भवन के निर्माण में ईंटों के स्थान पर लग जावें और इस शिरोदान यज्ञ में हम गौरव अनुभव करें यही तुझसे वर माँगते हैं और जन्म-जन्मान्तर में जब नया सिर मिले तो फिर इस भवन की ईंट बने यही फल है, जो हमें प्यारा है, हम और कुछ नहीं माँगते तेरी यही इच्छा हो और तेरी इच्छा पूर्ण हो।

आज इस वेद सम्मेलन में हम वेद सेवा के लिये इकट्ठे हुए हैं। वेद की सेवा का ऋषि दयानन्द ने हमें किस प्रकार मार्ग दिखाया उसमें क्या बाधा है और क्या साधन है यही विषय आज आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ।

॥ओ३म्॥

ऋषि दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली

ऋषि दयानन्द अपने समय में अपने ढंग के अकेले थे। अकेले बिल्कुल अकेले, सौ में अकेले, हजार में अकेले, लाख में अकेले, करोड़ में अकेले दुनिया के दो अरब मनुष्यों में अकेले। बस साथी तो वह भगवान् था जिसने उन्हें सारे विश्व से निराले होकर वेद के सच्चे अर्थ समझाने का सामर्थ्य दिया।

उन्हें किस-किस का सामना करना पड़ा?

भारत में अन्धविश्वास तो थे ही, किन्तु वेद के अर्थ को विपरीत करने में उनके सामने जो सबसे बड़ा अन्धविश्वास खड़ा था, वह विकासवाद का अन्धविश्वास था। इस घोर अन्धविश्वास को पश्चिमीय विज्ञान तथा पश्चिम की कुटिल राजनीति दोनों का समर्थन प्राप्त था। पश्चिमी विकासवादी कहते थे, **"प्राचीना आर्या मूर्खाः प्राचीनत्वात् अस्मदीय प्राचीनपुरुषवत्।"** इस हेत्वाभास भरे अनुमान को देखकर हँसी भी आती थी और रोना भी। हँसी इसलिये आती थी मानो कोई किसी सती को कह रहा हो **"सति पत्यौ त्वं विधवा स्त्रीत्वात् प्रतिवेशिनीवत्।"**

वेद में कितनी ही बुद्धिमत्तापूर्ण बात लिखी हो किन्तु उसका अर्थ उल्टा ही होना चाहिए नहीं तो समझ लो कि वेद का पाठ विकृत हो गया है। वेद में बुद्धिपूर्वक बात हो ही नहीं सकती क्योंकि मानव के वैदिक पूर्वज हमारी अपेक्षा बन्दर के अधिक समीप थे। यदि आप इस विकासवाद के अन्धविश्वास का खेल देखना चाहें तो अथर्ववेद के इस मन्त्र का सायण तथा ग्रिफिथ का अनुवाद देख लीजिये।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्त उतगोरङ्गैः पुरूधायजन्त।
य इमं यज्ञ मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥अथर्व ७/५/५

इसका सायणकृत भाष्य इस प्रकार है -

ते देवा यजमानाः मुग्धाः कार्याकार्य विवेकरहिता इत्यर्थः॥

कुत्ते से! इस विषय का कोई उपाख्यान जो इस विचित्र यज्ञ का वर्णन करता हो, उपलब्ध नहीं है। मुग्धाः यह असम्भव प्रतीत होता है कि मुग्धाः (बौखलाये हुए मोह वशीभूत) यह पाठ यहाँ ठीक हो। यहाँ तो तृतीया विभक्ति के किसी नाम की आवश्यकता थी क्योंकि प्रकरण ऐसा ही है। विक्टहेनरी महाशय ने मूर्ध्ना यह पाठ कल्पित कर लिया है। जिसका अर्थ है सिर से, जिससे तात्पर्य है दधीचि की ग्रीवा पर लगे हुए घोड़े के सिर से है जो कि बर्गेन महाशय के मतानुसार अग्नि वा सोम का प्रतीक है।

ग्रिफिथ का अनुवाद देखिये –

With dog the Gods, perlexed, have paid oblation and with cow's limbs in sundry sacrifices.

Invoke for us, in many a place declare him who with his mind hath noticed this our workship.

देवों ने परेशान होकर कुत्ते की भेंट अर्पित की और गऊ के अंगों के साथ छोटी भेंटें दीं। अनेक स्थानों पर उसको हमारे लिये जगाओं जिसने हमारी इस भेंट पूजा को देखा है।

अनुवाद तो सायण का है परन्तु इस पर ग्रिफिथ की टिप्पणी देखने योग्य हैं –

With dog! no legand refering to this extraordinary sacrifice has survived. Perplexed! it seems impossible that mgdh's (perplexed, infatuated) can be the right reading here. A substantive in the instrulmental case is required by the context. M. Victor Henry reads murdhna, with the head, that is, with the horse's head given to Dadhyach which, according to M. Beraigne (Religion, Vedique, II page 458) symbolizes Agni or soma.

इस प्रकार कुत्ते की यज्ञ में भेंट करने वाली कोई दन्त कथा हमें उपलब्ध नहीं होती और इस मन्त्र में 'मुग्धा' का पाठ असम्भव प्रतीत होता है। प्रकरणानुसार यहाँ तृतीया विभक्ति होनी उचित प्रतीत होती है। इसलिये यहाँ मुग्धाः के स्थान पर 'मूर्ध्ना' घोड़े का सिर दधीचि को भेंट में दिया जाना सम्भव हो सकता है। श्री मौशियर बर्गेन (Religion Vedic II Page 458) जो कि अग्नि और सोम हो सकता है।

यह देखिये विकासवाद की करामात। क्योंकि ग्रिफिथ साहिब की विचारधारा से यह मन्त्र मेल नहीं खाता इसलिये मन्त्र ही बदल डालना चाहिए।

सुनते हैं कि गवर्गण्ड के राज्य में एक मनुष्य को फाँसी हुई। फाँसी का फंदा उसके गले में पूरा नहीं आया हुक्म हुआ कि जिसके गले में पूरा उतरे उसी को फाँसी टाँग दो यही हाल यहाँ है। हमारे विकासवाद का फंदा इस मन्त्र के गले में पूरा नहीं उतरा, तो बस नया मन्त्र बनाकर उसी को अथर्ववेद का मन्त्र समझ लो। यह है विकासवाद का अन्धविश्वास।

इस वाद का आज के युग में इतना आतङ्क है कि इसके विरुद्ध कुछ बोलना उपहास को निमन्त्रण देना है, परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें जान क्या है?

विकासवाद का मूलाधार है प्राणयात्राजन्य परिवर्तन, प्राण की रक्षा के लिये जिसे नंगे पांव चलना पड़े उसके पैर का चमड़ा धीरे-धीरे मोटा तथा शीतोष्णादि द्वन्द्व सहन समर्थ हो जाता है। जिसे नंगे पैर न चलना पड़े उसका चमड़ा नरम पड़ता जाता है परन्तु यह नियम एक सीमा तक ही चलता है।

सींग, पूँछ, पंख आदि जो अंग मनुष्य के पास नहीं हैं, उन सबकी उसे आवश्यकता है। यदि न होती तो नाना प्रकार के शस्त्र नाना प्रकार की नौका-विमानादि तथा चामर और बिजली के पंखे आदि वह क्यों बनाता है। परन्तु आज तक उसके यह अंग क्यों प्रकट नहीं हुए जो जातियाँ सहस्रों वर्षों से नदी के किनारे रहती हैं और केवल मछली मारकर जीवन निर्वाह करती हैं, उनका सद्योजात शिशु तैरना क्यों नहीं जानता? क्या करोड़ों वैज्ञानिक अन्धविश्वासवश हम पर रौब डालने के लिये हाथ उठाकर चिंघाड़-चिंघाड़ कर कहेंगे कि उन्हें तैरने की आवश्यकता नहीं रही इसलिये वे तैरना भूल गये, तो भी इस बात पर अन्ध श्रद्धा के अतिरिक्त किसी दूसरे आधार पर विश्वास किया जा सकता है? कदापि नहीं।

दूसरी ओर जो भैंस सहस्रों वर्ष से राजपूताने में रहती है, जिसे कभी डूबने योग्य पानी में तैरने का अवसर वर्षों में एक आध बार आता होगा। उसका सद्योजात शिशु पानी में घुसते ही क्यों तैरने लगता है?

मानव जगत् तथा मानवेतर जगत् का यह पर्वताकार भेद आँखों से कैसे परे किया जा सकता है? इसे आँखों से परे करने का एक ही उपाय है।

विकासवादियों के भय के मारे आँखें बन्द कर ले। बस फिर तो अन्धकार के अतिरिक्त कुछ नहीं परन्तु जब तक मस्तिक में तर्क की एक चिन्गारी भी शेष है कोई आँखें कैसे मूँद ले?

अब लीजिये कछुए को, यह विचित्र जन्तु है। इसे जरा उलट दीजिये बस फिर एक पग भी नहीं चल सकता इसलिये यदि कोई मोटर कार उलट जाये तो अंग्रेजी में कहा जाता है :- The car has turned turtile. परन्तु इसमें भी विचित्र बात यह है कि इस जन्तु की पीठ पत्थर से भी अधिक कठोर है। दूसरी ओर इसका पेट अति सुकुमार है। हम पूछना चाहते हैं, कि इस जानवर की पीठ कब और कहाँ रगड़े खा खाकर कितने करोड़ वर्ष में इतनी कठोर हो गई? तब क्या यह पीठ के बल चलता था, और फिर इसका पेट बराबर नरम है यह कितने करोड़ वर्ष में कठोर होगा और अब यह पीठ के बल चलना एक दम क्यों भूल गया? वह करोड़ों वर्षों की आदत एक दम कहाँ रफू-चक्कर हो गई। इसके पेट की सुकुमारता को देखकर तो कहा जा सकता है कि इसे पैरों के बल चलते मुश्किल से कुछ हजार वर्ष हुए होंगे और वह करोड़ों वर्षों की पीठ के बल चलने की आदत कुछ हजार वर्ष में कहाँ भाग गई और इसके पैर तो अभी तक पत्थर के समान कठोर नहीं हुए।

अब एक और जीव श्रेणी लीजिये। इनमें से मैं मोर और कोयल को लेता हूँ। प्राण रक्षा के निमित्त परिश्रम करने से मोर के पञ्जे तीक्ष्ण हो गये हों। डैने बलवान् हो गये हों। चोंच कठोर हो गई हो यह सब कुछ तो समझ में आता है, परन्तु यह सुन्दर पूँछ के चन्दे कहाँ से आ गये। मोर के कण्ठ तथा पूँछ की सुन्दरता तथा कोयल के कण्ठ की काकली का जन्म कैसे हुआ? इस लम्बी सुन्दर पूँछ का सौन्दर्य कहाँ से आया और नृत्यकला मोर ने कहाँ से सीखी! उत्तर मिलता है कि सौन्दर्य पर ही मोहित होकर मोरनी मोर की ओर आकृष्ट होती है इसलिये यह उसकी प्राण रक्षा के लिये आवश्यक है वाहजी वाह यह भी एक रही। पहिले सुन्दर पूँछ बनी तब मोरनी आकृष्ट हुई, परन्तु प्रश्न तो यह है कि सुन्दर पूँछ बनी कैसे? चेतनाहीन प्रकृति में इस सुन्दर कलाकृति का विकास कैसे हुआ? उत्तर एक ही हो सकता है तर्क की आँख मूँद लो और विकासवादी महामहोपाध्याय जी के आगे हाथ जोड़कर कह दो सत्य वचन महाराज, नहीं तो आर्य समाजी कह कर तुम पर धरती से मिटा दिये जाने का

फतवा लगा दिया जायेगा। परन्तु हम तो टलने वाले नहीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव तथा मानवेतर जगत् में एक स्पष्ट भेद है।

मानव बिना सिखाए कुछ नहीं सीखता।

मानवेतर को जन्म से बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त हैं, जिन्हें सीखने में मानव को सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। कबूतर को उड़ने की सिद्धि, भैंस को तैरने की सिद्धि, रेशम के कीड़े को रेशम बनाने की तथा मधुमक्षिका को मधु तथा मधुकोष बनाने की सिद्धि, ये सिद्धियाँ इन जीवों को जन्म से प्राप्त है इसीलिये यह पशु अर्थात् द्रष्टा कहलाते हैं।

दूसरी ओर मनुष्य मनु अर्थात् मननशील कहलाता है। मनुष्य में जो अपत्य प्रत्यय है, यह आलङ्कारिक है अर्थात् मनन की सन्तान अन्यथा मनुष्य तथा मनु पर्यायवाची हैं जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण के इस प्रमाण से सिद्ध है।

होता मनुवृतोऽयं हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतः।

(ऐतरेय १० अध्याय २ खण्ड)

हमने देख लिया कि यह विकासवाद एक थोथी सारहीन निराधार तर्क विरुद्ध जर्जर कल्पना मात्र है किन्तु यही आज एक दीवार बनकर और हमारे सच्चे वेदार्थ के बीच खड़ी है। इस दीवार को तोड़ दो।

अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद

वेद का सच्चा अर्थ जानने में बाधक दूसरा वाद नवीन मीमांसकों का अदृष्टवाद अथवा अपूर्ववाद है। वेदवाणी की महिमा गान करते हुए पतञ्जलि महाराज ने कहा है –

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग्भवति।

अर्थात्–वेदवाणी का एक शब्द भी ठीक जानकर और उसे भली प्रकार प्रयोग में ले आवें तो वह कामधेनु है। इन मीमांसकों ने इसमें से **सुप्रयुक्तः** यह कड़ी उड़ा दी है **सम्यग् ज्ञातः** का अर्थ ये करते हैं **सम्यगुच्चारितः** इसीलिये इन्होंने यज्ञों का खूब विध्वंस किया और उसके साथ ही वेद का भी खूब विध्वंस किया। यज्ञ प्रक्रिया का मूलतत्व जानने के लिये हमें दो शब्दों को समझना होगा।

तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम्।
अहुयतैव सत्यं श्रद्धायाम्। **(शतपथ ब्राह्मण)**

अब इन मीमांसकों के कहे अनुसार उदात्तानुदात्त स्वरित का ठीक विचार करके सम्यक् मन्त्रोच्चारण पूर्वक घृत अग्नि में डाल दिया तो बस यज्ञ का पूरा–पूरा फल मिल जायेगा क्योंकि इस कर्म से एक में एक अदृष्ट अथवा अपूर्व पैदा होता है, फिर उस क्रियाकलाप का प्रत्यक्ष फल उस यज्ञ से चाहे विल्कुल विपरीत क्यों न हो, किन्तु अदृष्ट का जादू सब विघ्नों को पार करके मनुष्य को इष्टसिद्धि तक पहुँचा देता है। यह अदृष्टवाद ही समस्त अन्धविश्वासों का प्राण है। सारे भारत का अधपतन इसकी कृपा से हुआ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि प्रतीक है। श्रद्धा उसका प्रत्यानीय है, प्रतीक प्रत्यक्ष है, प्रत्यायनीय अदृष्ट है, अर्थात् अग्निहोत्र में जब अग्नि जलाकर उसमें घृत की आहुति करते हैं तो इस स्थूल क्रिया के पीछे श्रद्धा में सत्य की आहुति यह सूक्ष्म भावना छिपी है यह अदृष्ट है। इसको जान कर जीवन में आचरण करने से मनुष्य का कल्याण होता है। किन्तु इसके विपरीत यह मध्यकालीन मांसल प्रज्ञ मीमांसक लोग विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि

में घृत डालते ही यज्ञ पूरा हो गया और उसी समय यजमान के परलोक बैंक में अदृष्ट का चैक जमा हो गया। यहाँ **सम्यग् ज्ञातः** के पश्चात् **सुप्रयुक्तः** का कुछ काम नहीं बस **सम्यगुच्चारितः** से काम पूरा हो गया। मीमांसकों के अदृष्ट का प्रतीक मात्र से सम्बन्ध है। प्रत्यायनीय से कुछ नहीं इसीलिये शतपथ ब्राह्मणादि समस्त ग्रन्थों के भाष्य उपहसनीय दीखते हैं।

वर्तमान युग के एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

कम्युनिस्ट झण्डे पर हँसिया और हथौड़े का चित्र बना है। यह हँसिया और हथौड़ा प्रतीक हैं। हँसिया का प्रत्यायनीय है किसान और हथौड़े का प्रत्यायनीय है मजदूर।

अब यदि कहा जाय कि हँसिया हथौड़े की रक्षा करो। हंसिया हथौड़े के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है तो इसका अर्थ हुआ कि राष्ट्र के किसान मजदूरों की रक्षा करो इनके अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है। तब तो बिल्कुल ठीक है, परन्तु इसको न समझ कर कोई मनुष्य हथौड़े को नमस्कार करके फूल चढ़ाने लगे, तो उसे तो कुछ भी न मिलेगा और यदि हथौड़े को पैर से लात मारे तो थोड़ा सा पैर के तले में दर्द होकर रह जायेगा और तो इस अपमान का कुछ न होगा।

इस प्रकार हँसिया हथौड़े का, अदृष्ट किसान और मजदूर हैं। परन्तु मीमांसकों के विचारानुसार हंसियायै स्वाहा कर घृत की आहुति अग्नि में डालते ही एक अदृष्ट पैदा हो जाता है, बस फिर कल्याण में क्या देर है।

इस अदृष्ट शब्द के ठीक न समझने से कितना भयंकर परिणाम हुआ यह कह कर नहीं बताना पड़ेगा हम अपनी बात को पुष्ट करने के लिये यहाँ शतपथ ब्राह्मण का एक प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बिल्कुल पर्याप्त होगा।

तद्धैतज्जनको वैदेहः। याज्ञवल्क्यम् पप्रच्छ वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्या इति वेद सम्राडिति किमिति पयऽएवेति । २। यत् पयो न स्यात्। केन जुहुयाऽइति व्रीहियवाभ्यामिति यद् व्रीहियवौ न स्याताङ्केन जुहुयाऽइति याऽन्वाओषधयऽइति....। यदानयाऽओषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यं न स्यात्केन जुहुया इत्यद्भिरिति यदापो न स्युः केन जुहुया इति। ३। स होवाच। न वा इह तर्हि

किंचनासीदथैतदहूयतैव सत्यं श्रद्धायामिति वेत्थाग्निहोत्रं याज्ञवल्क्य धेनुश्शतन्ददामीति होवाच। ४।

(शत ११/३/१ से २-८ तक)

सो यह इस प्रकार हुआ कि एक समय वैदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा–हे याज्ञवल्क्य! अग्निहोत्र का तत्व जानते हो?

याज्ञ०–हाँ सम्राट् जानता हूँ।

जनक–किस पदार्थ से हवन करते हो?

याज्ञ०–दूध से।

जनक–यदि दूध न मिले तो किस से हवन करोगे?

याज्ञ०–जौ, चावल से।

जनक–यदि जौ, चावल न मिले तो किससे हवन करोगे?

याज्ञ०–तो जो कोई जंगली अनाज मिलेगा उससे।

जनक–यदि जंगली अनाज न मिले तो किससे हवन करोगे?

याज्ञ०–तो जंगली फलों से।

जनक–यदि जंगली फल न मिलें तो किससे हवन करोगे?

याज्ञ०–जल से।

जनक–यदि जल न मिले तो किससे हवन करोगे?

तो इस पर याज्ञवल्क्य बोले–जब केवल वेद ही था, और यह सब क्रियाकलाप कुछ नहीं था, तब भी हवन होता ही था, वह हवन सत्य का श्रद्धा में होता था। इस पर जनक ने कहा कि हाँ याज्ञवल्क्य तुम यज्ञ को ठीक जानते हो, मैं तुम्हें सौ गाय देता हूँ। ४।

इसीलिये इसी प्रकरण में प्रथम काण्ड में लिखा है कि –

वाग्घ वा एतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री। मनऽएव वत्सस्तदिदं मनश्च वाक्च समानमेध सन्नानेव तस्मात् समान्यारज्वा वत्सं च मातरं चाभिदधति तेजऽएव श्रद्धा सत्यमाज्यम्। १।

(शत ११/३/१/१)

इस अग्निहोत्र की दूध देने वाली गाय वाणी है। मन उसका बछड़ा है। सो यह मन और वाणी एक समान होते हुये भी पृथक् से हैं। इसलिये एक रस्सी से गाय और बछड़े को बाँधता है, यहाँ श्रद्धा अग्नि है और सत्य घृत है। यहाँ

स्पष्ट है कि गाय वाणी का प्रतीक है और बछड़ा मन का प्रतीक है। रस्सी दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध का प्रतीक है। अग्नि श्रद्धा का और घृत सत्य का प्रतीक है।

इस पर कहा जायेगा कि तब तो यह अग्नि होत्रादि यज्ञ एक प्रकार के नाटक हुए, जिनमें शूर्प अग्निहोत्रहवणी पुरोडाशादि अभिनय करने आते हैं तो उसका उत्तर हाँ में हैं।

भरतनाट्यशास्त्र में लिखा है **'यजुर्वेदादभिनयम्'**। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने अभिनय यजुर्वेद से लिया इसीलिये अब तक नाटक में अभिनय कर्ताओं को पात्र कहा जाता है यज्ञों में जो काम पात्रों से लिया जाता था वह नाट्य में स्त्री पुरुषों से लिया गया किन्तु नाम वही पात्र रहा यही नहीं स्वयम् शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र को काव्य कहा गया है। ऊपर जो वाक्य उद्धृत किया गया है उसी प्रसङ्ग में याज्ञवल्क्य अपने से प्राचीन किसी ऋषि के श्लोकों का उद्धरण देकर अथवा स्वयम् निर्मित श्लोक उद्धृत करके कहते हैं।

तदप्येते श्लोकाः। किंस्विद् विद्वान् प्रवसत्यग्निहोत्री गृहेभ्यः कथमस्य काव्यम्। कथसंतोऽग्निरिति। कथंस्विदस्यानपप्रोषितं भवतीत्येवैतदाह। ५। यो जविष्ठो भुवनेषु स विद्वान् प्रवसन् विदे तथा तदस्य काव्यम् तथा संततोऽग्निरिति। मनएवैतदाह मनसैवानपप्रोषितं भवतीति। ६।

जब अग्निहोत्री विद्वान् प्रवास में ही घर से बाहर हो तब क्या होगा? प्रवास में रहते हुए भी अग्निहोत्र की दृष्टि से अप्रवास हो वह कैसे होगा उसके काव्य का क्या बनेगा? अग्नि अविच्छिन्न कैसे रहेगा?। ५। इस प्रश्न का उत्तर अगली कण्डिका में है, जो इस संसार में सबसे तीव्र गति वाला है। वह विद्वान् ज्ञान देने के लिये प्रवास में साथ है, उसी के द्वारा काव्य की रक्षा होगी, अग्नि अविच्छिन्न रहेगा। सो यह सङ्केत मन की ओर है मन के द्वारा प्रवास, अप्रवास हो जायेगा। क्योंकि श्रद्धा रूप अग्नि, मन में है और अग्निहोत्र रूप काव्य उसके मन में उसके साथ है।

इस प्रतीक प्रत्यायनीय के रहस्य को न समझकर मध्यकालीन मीमांसकों ने विचित्र धांधली मचाई है। कात्यायन श्रौत सूत्र में लिखा है –

"अवकीर्णिनो गर्दभेज्या।"

अर्थात् जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रत भङ्ग कर बैठे उसे गर्दभेज्या करनी चाहिए। अब स्पष्ट है, कि ब्रह्मचर्यव्रत भङ्ग करने वाले का प्रायश्चित अभिष्ट है, इसलिये मूर्खता का प्रतीक गधा चुना गया। साथ ही यह भी बताया गया कि यदि तू गधे से कठिन परिश्रम करना तथा जो मिले खाकर प्रसन्न रहना यह सीखेगा तो फिर ब्रह्मचर्य भङ्ग न करेगा, यही प्रायश्चित का भाव है। प्रायश्चित का अर्थ है **प्र=अग्रे, अयः=गमनम्, चित्तम्=दृढ़ निश्चयः अर्थात् अग्रे गमनाय दृढ़निश्चयः** इस प्रकार हुआ। तूने भूल की गर्दभेज्या द्वारा तुझे दण्ड मिल गया, अब कमर कसके उठ और "आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय कर" अब तक यह गर्दभेज्या, भारत के ग्राम-ग्राम में प्रचलित है। जब कोई ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अपराध करता है, तो उसे गधे पर चढ़ाया जाता है। इस यज्ञ का स्थान भी वही शास्त्रोक्त है, अर्थात् चौराहा सो ब्रह्मचर्य का अपराधी गधे पर चढ़ कर चौराहे में घूमे यह तो प्रायश्चित हुआ, किन्तु यह भी तब होगा जब प्रायश्चिति इसके भाव को ठीक जानकर, उसे सुप्रयुक्त भी करेगा। केवल रीति-निर्वाह मात्र से कुछ लाभ न होगा। यहाँ गधा तो मूर्खता अध्यवसाय और स्वल्पाहार का प्रतीक मात्र है। गधे पर चढ़ना तो दृष्ट है, अदृष्ट भावना तो गधे से कुछ सीखना है और कुछ भूलना है। मूर्खता का परित्याग, अध्यवसाय और तप का ग्रहण, यह इस प्रतीक का प्रत्यायनीय है। परन्तु अब मध्यकालीन मीमांसकों की लीला देखिये।

जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य भंग करे वह गधे को काटकर चौराहे में हवन करे।

भला पूछिये तो सही कि यह प्रायश्चित क्या हुआ, एक पाप को दूर करने के लिये उससे भी बड़ा पाप कर डाला, ब्रह्मचारी ने तो व्रत भङ्ग किया और गधा बेचारा निरपराध मारा गया परन्तु बोलिये मत अदृष्ट उत्पन्न हुआ अपूर्ण उत्पन्न हुआ। कहीं कोई मीमांसक आप पर भी प्रहार न कर बैठे।

जरा आगे और लीला देखिये। गधा मारा गया उसका बँटवारा भी हो गया। एक भाग होता को एक अध्वर्यु को, 'एक उद्गाता को और एक यजमान को मिला। परन्तु सबसे बढ़िया भाग तो ब्रह्मा जी को मिलना चाहिए। सो देखिये चौराहे में से कुछ दबाये लिये चले आ रहे हैं। आप उत्सुकता से पूछेंगे वह क्या है? सो सुनिये। "**शिश्नात् प्राशित्रावदानम्**" अर्थात् ब्रह्मा जी

को गधे का ... मिले। जब घर पहुँचेंगे तो ब्रह्मा जी की पत्नी और बच्चे यह प्रसाद पाकर कितने प्रसन्न होंगे वाह वाह कैसे उछलेंगे? बोलो मत अदृष्ट उत्पन्न हुआ।

इस पर आप पूछेंगे कि तुम ही कहो कि इस सूत्र का अर्थ क्या है? तो सो दुनिया इस प्रकार उपस्थेन्द्रिय का दुरुपयोग करने वाले बालक को चतुर्वेदविद् ब्रह्मा, जो इस विज्ञान का विशेषज्ञ हो, उसकी शरण में ले जावें और उसकी देख रेख में रहकर इस इन्द्रिय का पूर्ण सुधार करें, जिससे फिर भूल न हो, तब प्रश्न होगा कि फिर वह ब्राह्मण खावें क्या? उत्तर यह है कि यह सुधार के विज्ञान से ही उनकी जीविका भी चलेगी, जिस प्रकार नेत्र विशेषज्ञ नेत्र की कमाई खाते हैं, इसी प्रकार शिश्न विशेषज्ञ शिश्न सुधार की कमाई खावेंगे और यह श्रद्धापूर्वक उन तक पहुँचाना यजमान का कर्तव्य है इसलिये इसे यज्ञ का अंग बनाया। इस प्रकार हुआ **"शिश्नात् प्राशित्रवदानम्"** सो इस प्रतीक प्रत्यायनीय के मर्म को न जानकर अदृष्टवादियों ने जो वेद का विध्वंस किया उससे ऋषि दयानन्द ने हमारा उद्धार किया धन्य हो दयानन्द!

विनियोगवाद

अब वेदार्थ ज्ञान का तीसरा महाविघ्न विनियोगवाद हमारे सामने आता है। विनियोग किसको कहते हैं? **अन्यत्रोपात्तानां वाक्यानाम् यथास्थान-मुपयोगी विनियोगः** जो वाक्य किसी एक ग्रन्थ के विशेष प्रकरण में पड़े हों उनको प्रसङ्गानुसार किसी वैसे ही प्रकरण में इस ढङ्ग से प्रयोग करना जिससे वे उस प्रसङ्ग में फब जावें, यही विनियोग कहलाता है। जैसे गीता का यह वाक्य

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ **गीता २/२७**

जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी, जो मरा है उसका जन्म अवश्य होगा इसलिये अवश्यम्भावी बात पर तुम्हें शोक करना उचित नहीं।

यदि किसी उपदेशक द्वारा किसी ऐसे अवसर पर पढ़ दिया जाये जहाँ किसी जवान पुत्र की देश सेवा के कार्य में मृत्यु हो गई तो वह इसका ठीक विनियोग होगा।

परन्तु किसी कन्या के विवाह पर कन्या की विदाई के समय यह वाक्य पढ़ा जावे, तो इसका अनुचित उपयोग होगा। यह विनियोग नहीं दुर्नियोग होगा। अब किसी वाक्य का विनियोग हुआ है अथवा दुर्नियोग, इसका निर्णय करने का उपाय यह है कि पहले उस वाक्य का ठीक अर्थ जानकर पीछे विनियोग को देखना चाहिए कि विनियोज्य वाक्य के ठीक अर्थ के अनुकूल है या नहीं। किन्तु इसके ठीक विपरीत मध्यकाल के मीमांसकों ने विनियोग वाक्यों का अर्थ निश्चित करके वेद को उसके पीछे चलाया, उदाहरण के लिये मैं यजुर्वेद ३७ अध्याय १२ मन्त्र को लेता हूँ।

मन्त्र इस प्रकार है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्यऽआयुर्मे दाः।
पुत्रवती दक्षिणतऽइन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः॥

सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः।
आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः॥
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधित्यऽओजो मे दाः।
विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि॥ **यजु. ३७/१२**

पति पत्नी की प्रशंसा में पत्नी से कहता है, हे पत्नि मेरा धर्म है कि मेरे रहते कोई तेरी ओर आँख न उठा सके और तुझे सदा उचित आदर से देखे इस प्रकार अनाधृष्टा तू अग्नि के राज्य में मुझे आयु देने वाली हो, मेरी दक्षिण दिशा में अर्थात् वीर्य शक्ति सम्पन्न होने की दशा में तू पुत्रवती होकर इन्द्र के राज्य में मुझे प्रजा देने वाली हो, उचित रूप से घर की देख रेख के लिये घर में बैठने वाली सुषदा होकर तू मेरे घर रूपी सवितृ मण्डल में मुझे आँख देने वाली हो। चारों ओर का ठीक-ठीक गृह वृत्तान्त मुझे सुनाने वाली अतएव आश्रुति बनकर तू उत्तर दिशा में अर्थात् मेरे वामाङ्ग में धाता के राज्य में मेरी गृहलक्ष्मी की पोषक बन, मेरे सिर पर धारने योग्य विधृति अर्थात् छत्र रूप बनकर तू बृहस्पति के राज्य में अर्थात् मेरे मस्तिष्क में ओज भरने वाली बन। तू सब नाष्ट्रा अर्थात् व्यभिचारादि द्वारा हमारा जीवन नष्ट करने वाली दुराचारिणी स्त्रियों से मेरी रक्षा कर सो किस प्रकार?

मनोरश्वासि=अन्तःकरणस्य व्यापिका भवसि।

भावार्थ-तू मेरे मन में इस प्रकार व्याप जाती है कि किसी दुराचारिणी के लिये उसमें स्थान ही नहीं रहता।

यह इस मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ है। कितना स्पष्ट कितना प्रकरणानुकूल कितना युक्तिसङ्गत। मन्त्र में पड़ा हुआ पुत्रवती शब्द पुकार-पुकार कर कह रहा है, कि इसमें पत्नी का वर्णन है इसका विनियोग पृथ्वी में हुआ है। सो इसमें कुछ अयुक्त बात नहीं। विवाह संस्कार में पति पत्नी से कहता है **"द्यौरहं पृथिवीस्त्वम्"** हे पत्नी मैं द्यौ हूँ, तू पृथ्वी है। यहाँ पति को बताने वाला द्यौः शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इसका चमत्कार दिखाने का यहाँ प्रसङ्ग नहीं वह यथास्थान दिखाया जायेगा। किन्तु यहाँ पृथ्वी कहकर वेदवाणी ने स्पष्ट रूप से पत्नी का वर्णन किया है। अब यदि मूल के पुत्रवती शब्द के पीछे पृथ्वी को चलाकर इस मन्त्र का अर्थ समझा जाय तो वह कितना शिक्षाप्रद तथा उत्साहवर्धक गृहस्थाश्रम में हमारा दर्शन बनता है। वेद

की महिमा इससे कितनी स्पष्ट दिखती है। परन्तु मध्यकालीन भाष्यकारों ने वेद के पीछे विनियोग को न चलाकर विनियोग के पीछे वेद को चलाया है।

उनका व्यवहार ठीक इसी प्रकार है जैसे कोई तैयार कपड़ों की दुकान पर जाकर एक पाजामा माँगे। जब वह पहिन कर देखे तो पता लगे कि पाजामे की टाँगे छोटी हैं। तब बड़ी टाँगों वाला पाजामा दिखाने के स्थान में दुकानदार ग्राहक से माँग करे कि कृपा करके टाँग कटा कर आजाईये पाजामा आपको पूरा आ जायेगा। विनियोग के पीछे मूल को चलाना, पजामे के पीछे टाँग को कटाने के सदृश घोर अत्याचार तथा पराकाष्ठा की मूर्खता है। किन्तु इसी मूर्खता का साम्राज्य मध्यकालीन मीमांसकों के द्वारा किये गये भाष्यों में दिखता है। ऊपर वर्णित मन्त्र का महीधर भाष्य देखिये।

हे पृथिवी जो तू पूर्व दिशा में राक्षसों से अनाधृष्टा है, अग्नि के आधिपत्य में मुझे (यजमान को) आयु दे। जो तू दक्षिण दिशा में इन्द्र के आधिपत्य में पुत्रवती है सो तू मुझे संतान दे जो तू पश्चिम दिशा में सुषदा अर्थात् जिसमें सब भली प्रकार बैठे ऐसी है सो सविता देव के आधिपत्य में मुझे नेत्र दे। हे पृथिवी जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में आश्रुति है अर्थात् ब्राह्मणों के वेद श्रवण से युक्त है, सो तू मुझे धन की पुष्टि दे। जो तू ऊपर की दिशा में बृहस्पति के आधिपत्य में विघृति है सो मुझे ओज दे। हे महावीर पात्र के दक्षिण ओर की भूमि तू सब नाशकारक पिशाचादि से हमारी रक्षा कर, हे महावीर के उत्तर भाग की भूमि तू राजा मनु की घोड़ी है।

इसी प्रकार पशुयाग में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका ऊटपटांग अर्थ इसलिये किया गया कि इनका विनियोग पशु संज्ञपन में है, अब यदि मूल मन्त्र के पीछे विनियोग को चलाते तो इन भाष्यकारों को पशु शब्द का भी ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता और संज्ञपन का भी, परन्तु इन विनियोग के दास मन्दमति लोगों ने पशु और संज्ञपन दोनों शब्दों के साथ जो लीला की है उस पर रोये अथवा हँसे यह कहना कठिन है। हँसी इसलिये आती है कि यह अर्थ बिल्कुल असम्भव है। पशु के माता-पिता से अनुमति माँगना फिर उनका अपने बच्चे को मारने की अनुमति देना फिर मरे हुए बच्चे की वाक् प्राण आदि की शुद्धि सब ही नितान्त असम्भव है। उधर रोना इसलिये आता है कि इन जड़मति लोगों ने वेद जैसी अमूल्य निधि को सारे संसार का उपहास पात्र बना डाला

है। प्रथम तो संज्ञपन शब्द का मारना अर्थ सम्भव ही नहीं और यदि कदाचित् व्याकरण द्वारा यह उपपन्न भी हो सकता हो तो सम्यग् ज्ञान देना इस प्रसिद्धार्थ को छोड़कर प्रकरण विरुद्ध असम्भव अर्थ को मन्त्रों पर क्यों लादा जाय यह बिल्कुल नहीं समझ में आता। संज्ञपन शब्द के अर्थ का निर्णय करने में निम्न बातें विचारणीय हैं।

संज्ञपन का अर्थ मारना करने में मरे हुए पशु को यज्ञ में डालना पड़ेगा किन्तु शतपथ स्पष्ट करता है कि –

जीवमेव देवानां हविरमृतममृतानाम्। **शत. ३/८/२/४**

देव लोग जीवित हैं मुर्दे नहीं हैं इसलिये उनकी हवि भी सजीव ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

इसलिये स्पष्ट है कि पशुयाग में जो मन्त्र दिये गये हैं वे जीवित पशु के ही अंगों में प्राण संचार करने वाले हैं, न कि मुर्दे के, और यह आहुति जीवन काल में ही दी जाती है। अतः प्राण संचार से पशु के अंग और भी सजीव हो उठते हैं।

कहा जा सकता है कि पशुयाग में जो पशु अङ्ग–अङ्ग विभक्त करने का वर्णन है सो यह भी जीवित का ही होना चाहिए। क्योंकि शतपथ ने स्पष्ट कह दिया है, **"जीवमेव देवानां हविः"** जिन्दा देवताओं की हवि जिन्दा ही हो सकती है मुर्दा नहीं।

अब प्रश्न यह होगा कि क्या यह भी सम्भव है पशु जिन्दा भी रहे और उसके अङ्ग–अङ्ग विभक्त हो जावें? तो इसका उत्तर हाँ में है। इस गोरखधन्धे को सुलझाने से पहिले हम पशु शब्द का अर्थ खोलकर दिखलाना चाहते हैं। पशु का अर्थ है बालक। क्योंकि बालक में मनन शक्ति पीछे प्रादुर्भूत होती है, आरम्भ में उसका जीवन निसर्ग बुद्धि (Instinct) से चलता है। पशु जीवन भर (Instinct) निसर्ग बुद्धि से ही दीखते हैं किन्तु मनुष्य मनन शक्ति की औलाद है। उसकी मनन शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है सो वह पशु (पश्यतीति पशुः) इस अवस्था से निकल मनु होता जाता है।

अथर्ववेद में मन्त्र आया है –

वितिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्ना नानारूपाः पशवो जायमानाः।

अथर्व. १४/२/२६

इस मन्त्र में नव-वधू के स्वागत में आशीर्वाद दिया गया है कि इस माता की गोद से पशु जन्म ले उन्हें प्रतिष्ठा लाभ हो।

इस मन्त्र के अनुवाद में ग्रिफिथ जैसे कट्टरपन्थी को भी पशु का अर्थ babies करना पड़ा है। यजुर्वेद में भी लिखा है –

देवा यद् यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषम् पशुम्। यजु. ३१/१५

विद्वान् जो पवित्र यज्ञ करते हैं उसमें पुरुष पशु को बान्धते हैं। यह तो हुई पुरुष सामान्य की बात अब जो घोड़ा-गधा आदि पशुओं के नाम आते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि गुण वाले पुरुषों के नाम हैं। देखिये –

क्षत्रं वा अन्वश्वो वैश्यं च शूद्रं चनुरासभो ब्राह्मणमजः।

शत. ६/४/४/१४

घोड़ा क्षत्रिय के अनुकूल गुण वाला है वैश्य शूद्र गधे के और ब्राह्मण बकरे के गुण वाला।

सो जो छाग अर्थात् बकरी का बच्चा है यह गुरुकुल में प्रवेशार्थी छोटे बालक का नाम है। क्योंकि वह ऐसा नम्र तथा भोला-भाला है। इसीलिये अंग्रेजी भाषा में भी Innocent as a lamb यही उपमा दी जाती है।

इस बालक को जब व्यायाम की शिक्षा दी जाती है तो उसका एक अङ्ग अलग दिखने लगता है और वह जिन्दा भी रहता है। इस प्रकार का बालक ही देवताओं का हवि होता है अर्थात् राष्ट्र के जिस विभाग के लिये उसे तैयार में करना हो उसके लिये उपयोगी होता है। बेडौल शरीर वाला अर्थात् चर्बी से लदा हुआ अथवा अस्थि-पञ्जर मात्र बालक यज्ञ अर्थात् संगठन के किसी काम का नहीं उसकी चर्बी पेट से कटकर व्यायाम द्वारा जगी हुई प्राण शक्ति द्वारा जहाँ उसकी आवश्यकता है वहीं पहुँचनी चाहिए, यही चर्बी के हवन का भाव है। इस प्रसंग में कालीदास का यह श्लोक लीजिये।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनैन॥

कुमारसम्भवम् १/३१

कालिदास पार्वती के शैशव से यौवन में प्रवेश का वर्णन कर रहे हैं। जिस प्रकार चित्रकार की तूलिका चित्र में एक एक अङ्ग को विभाग

करके अलग-अलग दिखा देती है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमल की पंखड़ी खिल जाती है उसी प्रकार नवयौवन ने पार्वती के अङ्ग-अङ्ग का विभाग करके उसे सुन्दर बना दिया। अब यहाँ क्या आप यह अर्थ करेंगे कि नवयौवन ने छुरी लेकर पार्वती के अङ्ग-अङ्ग काट डाले? इसी प्रकार कालिदास का एक श्लोक और लीजिये मृगया की प्रशंसार्थ अभिज्ञानशाकुन्तल में वे लिखते हैं कि -

"मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः"। अ.शा. १/५

अर्थात् मृगया से चर्बी कट जाती है और शरीर हल्का और फुर्तीला बन जाता है। अब यहाँ क्या यह अर्थ किया जायेगा, कि मृगया छुरी लेकर पेट की चर्बी काट डालती है, कदाचित् नहीं, तो चर्बी जाती कहाँ है? अग्नि के अर्पण हो जाती है, किसी डाक्टर से पूछ लीजिये वे आपको बता देंगे, कि व्यायाम से चर्बी ईंधन के समान जलकर छंट जाती है। यही चर्बी की अग्नि में आहुति है।

जब तक शतपथ का **"जीवमेव देवानां हविः"** जिन्दा ही देवताओं का हवि हो सकता है मुर्दा नहीं, यह वाक्य विद्यमान है तब तक करोड़ों पण्डित भी इकट्ठे होकर यज्ञ में पशु हिंसा सिद्ध नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त सारे वैदिक वाङ्मय में पशुयागवादि एक स्थान पर भी **"पशुम् मारयन्ति अथवा प्राणैर्वियोजयन्ति"** ऐसा वाक्य नहीं दिखा सकते। हाँ इसका उल्टा तो अवश्य उपस्थित है।

तन्नाह जहि मारयेति मानुषं हि तत् संज्ञपयान्वगनित तद्धि देवत्रा स यदाहान्वगन्निति एतर्हि एष देवाननु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति॥

शत. ३८/२/१४

पशु के संज्ञपन काल में जहि, मारय, यह शब्द नहीं कहे जाते क्योंकि वह मनुष्यों का व्यवहार है। उस समय शब्द बोले जाते हैं संज्ञपन, अन्वगन् क्योंकि संज्ञपन के द्वारा यह देवों का अनुगामी बन जाता है। इसीलिये कहा अन्वगन्।

यह सचमुच बड़ी विचित्र बात है कि पशुयाग में संज्ञपन और आलम्भन शब्दों का ही व्यवहार होता है, मारण का कहीं नहीं। इसका कारण अवश्य विचारना चाहिए। बात स्पष्ट है पशुयागवादियों की यह तो हिम्मत नहीं हुई,

कि वे नये ग्रन्थ बना डालें उन्होंने वैदिक साहित्य के शब्दों के ही अर्थ बदल डाले। उदाहरण के लिये हम इस लेख में संज्ञपन शब्द को लेंगे। यह संज्ञपन शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु से णिच् प्रत्यय और उसके पश्चात् ल्युट् प्रत्यय करने से बना है।

इसमें पहिले सम् + ज्ञा का अर्थ देखते हैं। इसका अर्थ है भली प्रकार जानना और पहिचानना, चारों वेदों में यह शब्द और किसी अर्थ में नहीं आया, इसका निम्न उदाहरण पर्याप्त होगा –

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥ **ऋग्. १०/१९१/२**

हे मनुष्यो! तुम संगठित होकर परस्पर सम्वाद (Harmony) से चलो। तुम्हारे मन परस्पर एक दूसरे को समझते हों, तुम्हारे अन्दर Perfect mutual understanding हो। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्व विद्वान् लोग अपने-अपने कार्य भाग की उपासना परस्पर संज्ञानपूर्वक करते आये हैं।

मन्त्र का अर्थ इतना निर्विवाद है कि इसमें टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं। इस अर्थ से सब सहमत हैं।

अब संज्ञपति को लीजिये। यह संज्ञा या हेतुमद् भाव का रूप है। इसका अर्थ हुआ सम्यक् ज्ञान अथवा भली प्रकार परिचय कराना। फलतः उत्तम शिक्षा देना। इसी से संज्ञपन शब्द बना।

अब इस संज्ञपि का प्रयोग भी देखिये। मनवाणी के झगड़े में वाणी कहती है, कि हे मन मैं तुझसे बड़ी हूँ। इसके लिये वाणी यह युक्ति देती है।

अथह वागुवाच अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि यद्वै त्वं वेत्थ अहं तद् विज्ञपयामि अह संज्ञपयामीति॥ **शत. १/५/७/१०**

इस पर वाणी बोली मैं ही तुझसे बड़ी हूँ। क्योंकि जो कुछ तू जानता है उसे मैं ही विज्ञापन करती हूँ। मैं समझती हूँ। यहाँ सायण भाष्य (तथाकथित) में भी सम्यक् प्रतिपादयामि यही अर्थ किया गया है।

यह प्रसंग प्रथम काण्ड का है। पशुयागवादियों का प्रसंग तीसरे काण्ड में है। पता नहीं लगता कि जिस शब्द का अर्थ प्रथम काण्ड में सम्यक् ज्ञान देना है उसका अर्थ तीसरे काण्ड में मारना किस प्रकार हो गया?

कहा जा सकता है कि एक शब्द के दो अर्थ हैं, सो प्रकरण के बल से वहाँ ऐसा अर्थ कर दिया गया होगा सो प्रथम तो इस शब्द का दूसरा अर्थ जबर्दस्ती के बिना किया ही नहीं जा सकता। परन्तु यदि दुर्जनतोष न्याय से इसेक दो अर्थ मान भी लिये जावें, तो अब देखना चाहिये कि प्रकरण क्या कहता है?

पशुयागवादियों के मतानुसार

बकरी के बच्चे को जब संज्ञपन अर्थात् मारने के लिये ले जाते हैं तो उसे फांसी लगाकर मारते हैं, उस समय मन्त्र पढ़ते हैं – **"ऋतस्यत्वा देव हविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि" (यजु० ८/६)** अर्थात् हे देवताओं की हवि! तुझे हम ज्ञान के पाश से बँधाते हैं। यह गला घोटना खूब ज्ञान का पास हुआ। अब कहिये प्रकरणानुसार सम्यक् ज्ञान देना अर्थ हुआ अथवा गला घोटना; फिर मन्त्र पढ़ते हैं।

अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ये...।

यजु. ६/९

हम अब तुझे मारेंगे अब तेरे माता-पिता, सहोदर भाई और टोली के मित्र सब इस शुभकार्य में अनुमति दें।

भला विचारिये कि पहले तो बकरी के बच्चे का उस प्रकरण में कहीं वर्णन नहीं, फिर यदि यहाँ छाग मान भी लें तो यह वर्णन छाग के समान विनीत बालक का हुआ, जो ब्राह्मण गुण वाला है। भला बकरी के बच्चे के माता-पिता आदि का प्रथम तो पता ही किस प्रकार लगेगा? फिर वे अनुमति किस प्रकार देंगे? फिर यदि उनमें अनुमति देने की शक्ति होती, तब वे तो यजमान को ही स्वर्ग पहुँचाने को कहेंगे अपने बच्चे को नहीं।

आगे चलिये। यजमान की पत्नी मरे हुए बकरे के अङ्ग स्पर्श करके मन्त्र पढ़ती है –

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि।

यजु. ६/१४

हे बकरी के बच्चे मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, प्राण को शुद्ध करती

हूँ। चक्षु को शुद्ध करती हूँ, कान को शुद्ध करती हूँ, नाभि को शुद्ध करती हूँ, उपस्थेन्द्रिय को शुद्ध करती हूँ, गुदा को शुद्ध करती हूँ, तेरे चरित्रों को शुद्ध करती हूँ। भला यह चरित्र शुद्धि तो जीवित बकरे की भी असम्भव है मरे की तो कहना ही क्या?

फिर अगले मन्त्र में मरे बकरे को आशीर्वाद देते हैं -

वाक् तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽआप्यायताम् श्रोत्रं तऽआप्यायाताम्। यजु. ६/१६

हे मरे हुए बकरे! तेरी वाणी फले-फूले, तेरे प्राण फले-फूलें, तेरे चक्षु फले-फूलें, तेरे कान फले-फूलें।

(शमहोभ्य:) तेरे दिन सुख-शान्ति से बीतें। अब यदि संज्ञपन के दो अर्थ भी मान लें तो विद्यादान मानने से अर्थ यों हुआ, हे विनीत बालक आज घर से गुरुकुल के लिये विदाई देते समय हम तुझे ज्ञान के पाश से बाँधते हैं। माता-पिता, सहोदर भाई, टोली के साथ सब तुझे प्रसन्न होकर गुरुकुल के लिए विदा करें। गुरु पत्नी कहती है मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, तेरे प्राण शुद्ध करती हूँ, तेरे नेत्र शुद्ध करती हूँ, नाभि शुद्ध करती हूँ, कान शुद्ध करती हूँ, लिङ्ग शुद्ध करती हूँ, गुदा शुद्ध करती हूँ। अत: इन सब इन्द्रियों की शुद्धता तथा सदुपयोग सिखाकर मैं तेरा चरित्र शुद्ध करती हूँ। फिर स्नातक होने के समय उसे आशीर्वाद दिया जाता है तेरी वाणी फले-फूले, तेरे प्राण फले-फूलें, तेरे कान फले-फूलें, तेरे नेत्र फले-फूलें, तेरे दिन सुख से बीतें।

अव एक ऐतरेय ब्राह्मण का भी प्रमाण लीजिये -

ता भृगुरपश्यदापो वै स्पर्धन्त इति। ता एतयर्चा समज्ञपयत्।

ऐतरेय ८ अध्याय २ खण्ड

वसतीवरी और धना नाम की दो आप: में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को भृगु ऋषि ने देखा सो उसने उन्हें आपस में एक मत कर दिया। यहाँ स्वयं सायण ने भी झख मारकर समज्ञपयत् का अर्थ संज्ञानम् **परस्परमैकमत्यमप्रापयत्** इस प्रकार किया है। फिर पशु के सम्बन्ध में इसका अर्थ किस प्रकार बदल गया?

इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है, कि इस शब्द का अर्थ षड्यन्त्र द्वारा जान-बूझकर बिगाड़ा गया है।

अब यह स्पष्ट हो गया, कि इस विनियोगवाद ने वेद की कैसी दुर्दशा की है। इन तीन वेदविघातक वादों अर्थात् (१) विकासवाद (२) अदृष्टवाद (३) विनियोगवाद से ऋषि दयानन्द ने वेद को मुक्त करके सारे संसार के लिए मोक्ष का रास्ता खोल दिया। क्योंकि जब संसार के मोक्ष का उपाय बताने वाला वेद ही स्वयं दास बन गया हो तो संसार का मोक्ष किस प्रकार हो सकता था?

यहाँ तक हमने वेद विघातक तीन वादों का वर्णन किया। अब हम ऋषि दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली के आधारभूत तीन वादों का वर्णन आरम्भ करते हैं। वे तीन वाद निम्नलिखित हैं –

(१) यौगिकवाद (२) समकक्षवाद (३) विज्ञाताश्रयवाद।

यौगिकवाद

सबसे पहले यौगिकवाद को लीजिये। वेद के शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सब को मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो –

अश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः। अथर्व. १/४/४

यहाँ वाजि और वाजिनी शब्द का क्या अर्थ करेंगे?

घोड़े घोड़े हो जावें और गोवें घोड़ी हो जावें! कदापि नहीं।

यहाँ सायण को भी वाज इति बलनाम यह निरुक्त प्रमाण देकर **अश्वाः बलयुक्ता भवथ** और **गावः प्रभूतक्षीरा भवथ** ऐसा अर्थ करना पड़ा। यदि अश्वादि शब्दों का रूढ़ अर्थ लेंगे तो।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।

ऋग्. १/८८/१

अश्व पर्ण शब्द जो रथ का विशेषण है सो कैसे बनेगा?

अश्वाः आशुगामिनः पर्णा येषाम् ऐसा अर्थ करना ही पड़ेगा सो अश्व का अर्थ यहाँ शीघ्रगामी के अतिरिक्त क्या होगा?

इसी प्रकार यदि कण्वादि नाम वेद में व्यक्ति विशेष में रूढ़ हो तो उनमें तमप् प्रत्यय नहीं लग सकता क्या दुनिया में कभी देवदत्त देवदत्ततर तथा देवदत्ततम अथवा Napolian, Napolianer, Napolianest का प्रयोग भी देखने में आता है? कभी नहीं! किन्तु ऋग्वेद १/३१/२ में **त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः...** ऐसा प्रयोग है और इस प्रकार ११ स्थलों पर देखने में आता है।

ऋग्वेद १/८८/४ में **कण्वतमो नृणाम्** यह प्रयोग है जिसका अर्थ मनुष्यों में मेधावितम् इस प्रकार करना पड़ता है इसी प्रकार ऋग्वेद १०/१५५/५ में **अग्नि कण्वतमः कण्वसखा** ऐसा पाठ है जिसका अर्थ बुद्धिमानों का मित्र तथा सबसे बड़ा बुद्धिमान ऐसा करना पड़ता है।

यह यौगिकवाद ऋषि दयानन्द ने चलाया हो सो भी बात नहीं इस विषय

में सायण की लीला भी देखिये।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद् गवि।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम्।

ऋग्. ५/६४/७

यहाँ सायण ने हस्तिभिः का अर्थ किया है अश्वैः सो किस प्रकार वह भी देखिये **इदानीं हस्तिभिः हस्तिवद्भि इन्तेर्गति कर्मणो हस्त शब्दः गमन साधन पादवद्भिरित्यर्थः पद्भिः पादचतुष्टयोपतैरश्वैः।** अर्थात् गमन क्रिया का साधन होने से हस्त नाम पाद का हुआ इसलिए हस्ती का अर्थ पैर वाले घोड़े इस प्रकार हुआ। अच्छा! फिर आगे पड़े हुए षड्भिः का क्या बनेगा यह सायण ही जाने, इस प्रकार सायण यदि हाथी का घोड़ा बना दें तो उस पर खींचातानी का दोष नहीं लगता। बात तो इतनी है कि इस सूक्त का विनियोग आश्विदेवता की स्तुति में है। बलिहारी है विनियोग की।

अब हम यौगिकवाद पर होने वाले एक आक्षेप का भी समाधान कर देना चाहते हैं लोगों का प्रश्न है कि यदि गच्छतीति गौः अर्थात् जो चले उसका नाम गौ, ऐसा माना जाये तो लट्टू, घड़ी, नदी, घोड़ा, खच्चर, रेलगाड़ी, मोटर, बाईसिकल, सबका नाम गौ होना चाहिये! नहीं? यह ठीक नहीं! यौगिकवाद का यह तात्पर्य कदापि नहीं।

किसी शब्द का यौगिक अर्थ जानने का प्रकार यह है कि वेद में वह कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकरण में प्रयुक्त हुआ है यह देखकर ऐसा अर्थ ढूँढ निकालना जो उन सब अर्थों का अपने अन्दर समावेश करता हो। जैसे गौर शब्द वेद में धरती, वाणी, इन्द्रिय, स्त्री तथा गाय इन अर्थों में आया है। तो गौ का अर्थ हुआ प्रिय वस्तु को उत्पन्न करने के लिये गति करना। गाय दूध को उत्पन्न करने के लिए विचरती है स्त्री सन्तान को, इद्रियें ज्ञान अथवा विषय सुख को, वाणी अर्थ को, धरती अन्न को, इसी प्रकार ऋ धातु को ले लीजिये यद्यपि व्याकरण में ऋ गतौ इस प्रकार अर्थ दिया है। परन्तु ऋ धातु का अर्थ जानने के लिये इसके प्रयोगों को देखना होगा। ऋ धातु से ऋतु शब्द बना है जिसका अर्थ है शीतोष्णादि अवस्था विशेष के लिये नियतकाल। ऋतु का अर्थ है सत्य अर्थात अन्यूनानतिरिक्त। यथार्थ ज्ञान। जिसका उल्टा अनृत न्यून अथवा अतिरिक्त ज्ञान हुआ। इससे ऋ धातु का अर्थ है परिमित। गति यह

आशय वेद में स्वयम् अत्यन्त स्पष्ट कर दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है –

ते नो अर्वन्तो वनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।

ऋग्. १०/६४/६

वे हमारी आवाज सुनकर इशारे पर चलने वाले मितद्र अर्वा हमारी बात सुनें। यहाँ अर्वन्तः के अर्थ को मितद्रवः ने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। वे इतने सधे हुए घोड़े हैं कि दौड़ने के समय द्रुत गति में भी नाप के साथ चलते हैं।

इन्हीं अर्थात् सधे हुए घोड़ों के कारण आर्यों ने अरब देश का नाम अरब रखा। अरबी भाषा में इस अर्व नाम का कुछ अर्थ नहीं, क्योंकि यह शब्द संस्कृत भाषा का है और इस देश का नाम आर्यभाषा-भाषी लोगों ने ही रखा, आज भी इसके घोड़े throught bried के नाम से पुकारे जाते हैं।

इसी ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना है जिसका अर्थ पाणिनी के अनुसार स्वामी अथवा वैश्य है **(अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः - अष्टा. ३/१/१०३)** इस शब्द को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने खूब धाँधली मचाई है। उनका कहना है कि ऋ धातु से अर्य्य शब्द बना। वैश्य का काम कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य है, इसलिए ऋ धातु का अर्थ है खेती करना, इसकी पुष्टि वे अंग्रेजी भाषा के arrable land अर्थात् खेती योग्य भूमि इस शब्द से करते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है वैश्य अर्थ इसलिये कहलाता है कि उसके साथ हर बात नाप तौल में की जाती है। आप माँ के साथ मचल सकते हैं माँ लड्डू खायेंगे। हो सकता है माँ आपके हाथ में ताली दे दे जा जितने जी में आये खा ले परन्तु हलवाई से आप मचल नहीं सकते, जहाँ आपने कहा कि आज हम लड्डू खायेंगे और उसने तराजू पकड़ी कि बोलों कितने तोलूँ सो अर्य्य का अर्थ हुआ मित्या प्राप्तव्यः जिसके साथ नाप तोल में ही बात की जाय, स्वामी भी अर्य्य इसीलिये कहलाता है क्योंकि वह सेवक के काम को नाप तोलकर उसके अनुसार वेतन देता है। अंग्रेजी भाषा में जो खेती के योग्य भूमि को arrable कहते हैं वह भी इसलिये कि उसे ठीक-ठीक नापना पड़ता है। निरुक्त में लिखा है **"अर्य्यः ईश्वर पुत्रः"** अर्थात् अर्य्य का अर्थ है सबसे बड़े स्वामी परमात्मा का पुत्र अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा का प्रत्येक कार्य यथातथ्य पर अवलम्बित है

(यथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः) यजु. ४०/८ जो उसके गुण कर्म स्वभाव अपने अन्दर धारण करे अर्थात् जिसका पूर्णतया नपा तुला जीवन हो वही आर्य है। इस शब्द को एक जाति वाची शब्द मानकर योरोपियन लोगों ने बवण्डर खड़ा किया है वह आज दक्षिण देश में अपने रंग दिखा रहा है। दु:ख तो यह है कि पण्डित जवाहर लाल सरीखे सच्चे देश-भक्त तथा पुरुष भी इस क्षेत्र में योरोपियन धूर्त्तों के चक्र में फँस कर इतने अन्धे हुए हैं कि इस भूल को नहीं सुधारते, आपने देखा कि एक शब्द के साथ किया गया अत्याचार कैसे-कैसे गुल खिलाता है? सो वेद के शब्द यौगिक हैं और यौगिकवाद का अर्थ अन्धाधुन्धवाद नहीं किन्तु सर्वार्थ समावेशवाद है।

इस विषय में ऋषि दयानन्द का पक्ष सत्य की चट्टान पर खड़ा है और वह समय दूर नहीं है कि जब विदेशी धूर्त्तों के जहाज इस चट्टान से टकराकर अवश्य चकनाचूर होंगे। हो सकता है कि मेरे धूर्त्त शब्द पर कई लोग आपत्ति करें किन्तु पण्डित गुरुदत्त जो आदि विद्वानों द्वारा सत्यज्ञान कराये जाने पर भी जिन्होंने राजनैतिक स्वार्थवश आर्य द्रविड़ का झगड़ा करने के लिये आर्य जैसे पवित्र शब्द की मट्टी पलीद की। उन्हें धूर्त्त न कहूँ तो फिर क्या कहूँ? परमात्मा हमारे देश के इतिहासविदाभासों का इनके चंगुल से कब उद्धार करेगा?

समकक्षवाद

अब यौगिकवाद के साथ ही लगे हुये हम एक और वाद की ओर आते हैं यह है समकक्षवाद। उपनिषत् में कहा है – **"अनन्ता वै वेदा:"** स्कन्द आदि भाष्यकारों ने भी आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीन अर्थ मन्त्रों के बताये हैं। वस्तुत: यह तीन ही क्यों, वेद के एक ही मन्त्र के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। परन्तु इन सब अर्थों में एक व्यवस्था काम कर रही है। सच पूछिये तो पुरुष सूक्त वेद की कुंजी है। इस ब्रह्माण्ड में जो सूर्य चन्द्रादि देव हैं उनकी कल्पना मनुष्य के शरीर में करके फिर उनका प्रतिनिधि मानव समाज में ढूंढना यही पुरुष सूक्त का सार है। भाव यह है कि इस संसार में जितने भी प्रकार के यन्त्र विज्ञान द्वारा बनाये जा सकते हैं वे सब मनुष्य की किसी न किसी इन्द्रिय की सहायता के लिये हो तो हों, उन यंत्रों में प्राण, चिन्तन, मननादि शक्तियाँ नहीं हैं, इसलिये वे मनुष्य से कुछ कम ही काम करेंगी अधिक नहीं कर सकतीं। हाँ मात्रा में वे मनुष्य की शक्ति को बहुगुणित कर सकती हैं सो हम जिस विद्या की भी खोज करना चाहें उसे एक पुरुष कल्पना करके पुरुष के अंग उससे खोज द्वारा उत्पन्न कर दिये जावें। सो अग्नि सोमादि जो देवता ब्रह्माण्ड में हैं वे ही मनुष्य शरीर में हैं। उन्हीं को हमें सर्वत्र कर देना है। उदाहरण के लिये मैं अग्नि तथासोम को लेता हूँ। शतपथ में लिखा है –

द्वयं वा इदं तृतीयमस्ति आर्द्रं चैव शुष्कञ्च यच्छुष्कं तदाग्नेयम् यदार्द्रं तत् सौम्यम्। शत. १/६/२/२३

फिर अगली कण्डिका में लिखा है –

सूर्य्य एवाग्नेय: चन्द्रमा: सौम्योऽहरेवाग्नेयं रात्रि: सौम्या।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड में सूर्य के उदय होने पर शुष्कता आती है वह आग्नेय है। चन्द्रोदय पर ओस पड़ती है आर्द्रता आती है वह सौम्य है जहाँ शुष्कता है वहाँ अग्नि है। जहाँ आर्द्रता है वहाँ सोम है। बस यह ब्रह्माण्ड आद्र तथा शुष्क इन दो में बँटा हुआ है। तीसरा नहीं। अब रोटी में आटा आग्नेय है। जल व घृत सोम्य है। शरीर में पित्त आग्नेय है। कु सौम्य है। इसीलिये

सुश्रुत में मानव शरीर को अग्नीषोमीय कहा है। ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ६ खण्ड ३ में –

नाग्नीषौमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्नाति यो-ऽग्नीषोमीयस्य पशोरश्नाति।

इस प्रकार चरक शरीर स्थान पंचाध्याय का आरम्भ इस प्रकार होता है।

पुरुषोऽयं लोकसम्मित... तस्य पुरुषस्य पृथ्वी मूर्तिराप: क्लेद: तेजोऽभिसन्ताप: वायु: प्राण: वियच्छिद्राणि ब्रह्मान्तरात्मा, यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके तथा पुरुषेऽप्यान्तरात्मिकी विभूति:। ब्रह्मणो विभूतिर्लोके प्रजापतिरन्तरात्मनो विभूति: पुरुषे सत्त्वम्। यस्त्विन्द्रो लोके स पुरुषेऽहङ्कार आदित्यस्त्वादानम्।...सोम: प्रसाद:।

इसी प्रकार सूत्र स्थान अध्याय ६ में लिखा है –

विसर्ग: सोम्य: आदानम् पुनराग्नेयम्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिन, रात, सूर्य, चन्द्र, ग्रीष्म, वर्षा, कु, पित्त इन सबको अग्नि तथा सोम कहा गया है। किन्तु इसमें इतना स्पष्ट है कि एक क्षेत्र में अग्नि का एक ही अर्थ होगा और उस पर यह नियम लागू होगा कि –

यदेव शुष्कम् तदाग्नेयम् यदार्द्रम् तत् सोम्यम्।

इस प्रकार लोक अग्नि–अग्नि है, जल सोम है, आकाश में सूर्य अग्नि है, चन्द्र सोम है, यह नहीं कि आकाश में चन्द्र का नाम अग्नि हो जाये। शरीर में पित्त अग्नि है तो कु सोम है। हम शुष्कम् और आर्द्रम के नियमानुसार जब किसी एक क्षेत्र में अग्नि और सोम का अर्थ पता लगा लें तो दूसरे हर क्षेत्र में उनके समकक्ष अग्नि और सोम कहलावेंगे। इसका नाम समकक्षवाद है। इस प्रकार हम यदि वेद के किसी एक क्षेत्र के अर्थ जान लें तो हर क्षेत्र में उन शब्दों का अर्थ जानना सुगम हो जायेगा। इस बात को हम मानचित्र के दृष्टान्त से भली प्रकार समझ सकते हैं। हम एक मानचित्र के छोटे–बड़े अनेक मानचित्र बना सकते हैं परन्तु उनमें कलकत्ते और दिल्ली की दूरी का अनुमान सदा एक रहेगा।

समकक्षवाद का एक सुन्दर उदाहरण शतपथ ब्रह्मण में क्रतु दक्ष शब्दों की व्याख्या में मिलता है –

क्रतुदक्षौ हैवास्य मित्रा वरुणौ एतन्नवध्यात्मं सयदेव मनसा कामयत इदं में स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुरथ यदस्मै तत् समध्यते सदक्षो मित्र एवक्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्ता क्षत्रियः।

शत. ४/१/५/१

क्रतु और दक्ष का अर्थ है मित्र और वरुण। अपने अन्दर देखने पर इनका अर्थ होगा कि जो मन में सोचता है मुझे यह प्राप्त हो उसके लिये मैं यह करूँ वह क्रतु है और जब उसका वह संकल्प फल समृद्ध होता है तब वह दक्ष कहलाता है (दक्ष समृद्धौ) मित्र क्रतु दक्ष वरुण है। ब्राह्मण मित्र है क्षत्रिय वरुण है क्योंकि मार्गदर्शक विधान बनाने वाला ब्राह्मण है। जो आगे चलता है वह ब्रह्म है। उस कार्य को करने वाला क्षत्रिय है।

इन्हीं मित्र वरुण को प्रथम काण्ड में -

"प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ।" शत. १/९/३/१२

इस प्रकार आधिदैवत पक्ष में जो प्राण उदान वही अधिराष्ट्र अर्थ में मित्र तथा वरुण हैं। वहीं अध्यात्म क्षेत्र में संकल्प तथा प्रयत्न हैं। इन तीनों क्षेत्रों में इनका नाम क्रतु दक्ष अथवा मित्र वरुण है। सो मित्र तथा वरुण एक क्षेत्र में एक ही हैं किन्तु क्षेत्र भेद से वह संकल्प तथा प्रयत्न, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, प्राण तथा उदान तीनों हैं। हाँ उनमें समकक्ष भाव है। एक अभिगन्ता है दूसरा कर्ता।

इसी प्रकार छान्दोग्य द्वितीयाध्याय दशम से इक्कीसवें खण्ड तक हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाँच संगीत के अंगों को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समकक्षवाद के आधार पर दिखाया गया है।

संगीत के आरम्भ में जो रंग का मन ही मन में आह्वान किया जाता है, गुनगुनाया जाता है, वह हिङ्कार है। राग ही स्थायी प्रस्ताव है, तान अलाप का फैलाव उद्गीथ है, धीरे-धीरे समाप्ति की ओर मुड़ने के लिये उतार का नाम प्रतिहार है, और सुन्दर समाप्ति का नाम निधन है। यह पाँच अंग मानसिक क्षेत्र में अग्नि प्रज्वलन, स्त्री सहवास, सूर्योदय, मेघ-वृष्टि, ऋतु-परिवर्तन, द्यौः पृथिवी, पशु मण्डल शरीर रचना, चन्द्रोदय, अग्नि, वायु, आदित्यादि देव मण्डल इन ११ क्षेत्रों में दिखाया गया है। इन प्रकरणों में समकक्षवाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। वेद में जो अनन्त विद्या भरी है उसका वही रहस्य है। हम

यदि समाजशास्त्र में अग्नि, सोम, इन्द्र आदि के अर्थ ठीक-ठीक जान लें तो यन्त्र विद्या में उनके समकक्ष क्या है? यह जानकर यन्त्र विद्या भी उन्हीं मंत्रों द्वारा मानी जा सकती है। यह बात यौगिकवाद के सहारे ही खड़ी रह सकती है। यदि हम जान लें कि अग्नि का अर्थ अग्रणी है, तब तो यह सब अर्थ ठीक समझे जा सकते हैं, परन्तु यदि हम अग्नि का रूढ़ अर्थ अंगारों में जलने वाली अग्नि ले लें तो फिर हम वेद का रहस्य कुछ नहीं जान सकते, यह समकक्षवाद ही है जिसके सहारे वेद समस्त विद्याओं का बीजरूप ज्ञान देने वाला कहलाता है।

अब हम इस वाद माला के अन्तिम वाद विज्ञाताश्रयवाद पर आते हैं।

विज्ञाताश्रयवाद

विज्ञाताश्रयवाद यह नाम नया है, वैसे यह कोई नई बात नहीं है। किसी अज्ञात वस्तु का स्वरूप जानने के लिये हमें ज्ञात वस्तुओं का आश्रय लेना पड़ता है।

मान लीजिये कि कोई नौकर अंग्रेजी के ऑयल शब्द का अर्थ नहीं जानता यदि कोई अंग्रेज टूटी-फूटी हिन्दी जानता है, किन्तु ऑयल शब्द की हिन्दी भूल गया है। वह अपने नौकर से कहता है कि इस दीवे में बत्ती है पर ऑयल नहीं रहा, तुम इसमें बोतल में से ऑयल डाल लाओ, जिससे रोशनी हो जाये। इसमें बत्ती है पर ऑयल नहीं है तो नौकर झट समझ जाता है कि ऑयल तेल को कहते हैं। वह साहब से पूछता है, साहब तेल डाल लूँ। अंग्रेज झट कहता है - हाँ तेल, तेल हम भूल गया था। तो यहाँ यह विज्ञाताश्रयवाद के सहारे उसने ऑयल शब्द का अर्थ जान लिया। उसे दीया, बत्ती, जलाना, रोशनी इन शब्दों का अर्थ ज्ञात था केवल ऑयल शब्द के अर्थ का जान लिया। इस विज्ञाताश्रयवाद के सहारे हम वेद के सब विवादास्पद शब्दों के ठीक अर्थ का निर्णय कर सकते हैं।

उदाहरण के लिये वैदिक शब्द मरुत् को ले लीजिये। हमारे विचार से ये मरुत् का अर्थ सैनिक है। पौराणिक भाष्यकार तथा उनके पिछलग्गू योरोपियन विद्वान इसका अर्थ पवन का देवता करते हैं। सो इस विवाद का निर्णय नृ शब्द से हो सकता है। ऋग्वेद में मरुत् देवता के ३७ सूक्त हैं, इनमें १८ स्थलों पर इनको नरः कहा गया है। इस शब्द से सायण के लिये कठिनाई उत्पन्न कर दी जिन्हें वह देवता कहता है उन्हें वेद नरः कहता है। इससे बचने के लिये सायण ने उसी यौगिकवाद का आश्रय लिया जिसकी आज सर्वत्र हँसी उड़ाई जाती है। वह कहता है कि **नरः मेघानाम् इतस्ततो नेतार इत्यर्थः** परन्तु इस विवाद का अन्तिम निर्णय मृ धातु करती है। मृ धातु का अर्थ प्राण वियोग सर्ववादि सम्मिलित है, इधर सायणादि सब पौराणिक भाष्यकार देवों का अमर बताते हैं। इधर वेद में चार स्थलों पर इन मरुतों को मर्याः अथवा मर्त्ताः कहा गया

है। अब यहाँ तो यौगिक अर्थ भी सायण का साथ नहीं देता उधर मरुत् शब्द स्वयं इस मृ धातु से बना है (**मृग्रोरुतिः** - उणादिकोष १/८४) इस प्रकार मृ धातु के विज्ञातार्थ के सहारे मरुत एक प्रकार के मनुष्य हैं यह निर्णीत हुआ। फिर उनका उत्तम शस्त्र धारण करना, पंक्ति बाँधकर चलना, कन्धे पर हथियार रखना आदि। सारा वर्णन एक सैनिक का चित्र खींच कर रख देता है। इसका विशेष वर्णन मेरे **"मरुत् सूक्त"** नामक निबन्ध में देखना जो गुरुकुल कांगड़ी से प्राप्य है। यहाँ विस्तार के भय से नहीं दिया जाता, फिर इनको अनेक स्थानों पर '**रुद्रस्य मर्याः**' '**रुद्रस्य सूनवः**' आदि विशेषणों से लक्षित किया गया है जिससे रुद्र का अर्थ सेनापति स्पष्ट हो गया। जो यजुर्वेद रुद्राध्याय में दिये गये **सेनान्ये** इस विशेषण से बिल्कुल मेल खा जाता है। ऋषि दयानन्द ने रुद्र का अर्थ सेनापति किया है, उसकी इस प्रकार बड़े प्रबल प्रमाणों से पुष्टि होती है।

इस प्रकार हमने मृ धातु के सहारे मरुत् का अर्थ जाना फिर मरुत् के सहारे रुद्र का अर्थ जाना। इस प्रकार पूर्व विज्ञातार्थ शब्दों के आश्रय से हम उत्तरोत्तर अविज्ञातार्थ शब्दों का अर्थ ठीक निश्चय कर सकते हैं, यह विज्ञाताश्रयवाद ही वेद का ठीक अर्थ निश्चय करने की वैज्ञानिक कुञ्जी है। इसको छोड़कर जो पाश्चात्य लोगों ने भाषोत्पत्ति शास्त्र (Philology) के नाम से लाल बुझक्कड़ों से लीला की है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं हैं।

मृ धातु का अर्थ वेद में तथा लौकिक संस्कृत में मरना है। इस सत्य को करोड़ भाषातत्वविद् किसी प्रकार भी नहीं पलट सकते। परन्तु योरोपियन भाषातत्वविद् तो हमें निरुक्त, निघण्टु तथा समस्त भाषा के कोषों को तिलांजलि देने को कहते हैं। Vedic Age नामक पुस्तक जो विद्या भवन की ओर से प्रकाशित हुई है, उसमें लिखा है -

Shiva and Vedic god Rudna have been identified, it is just likely that the name of the red god of Dravidion speakers the most important divinity in their pantheon was first rendered in Aryan speech as Rudra. **– S.K. Chaterji, Vedic Age**

इस विचित्र पुस्तक Vedic Age में एस० के० चटर्जी श्रीमुख से कहते हैं कि वैदिक देवता शम्भू तामिल चप्पू है जिसका अर्थ है ताँबा। ताँबा लाल रंग का होता है सो रुद्र देवता भी लाल रंग का होता है। सो रुद्र शब्द पहिले रुधिर था वह तामिल लाल रंग का देवता था। क्योंकि रुधिर अर्थात् खून का

रंग लाल होता है इस लिये लाल देवता का नाम रुधिर हुआ और पीछे से वही आर्यों का रुद्र देवता हो गया। बलिहारी है इस सूझ की। शम्भू शब्द शम् और भू दो शब्दों से बना है यह हम भली प्रकार जानते हैं, फिर हम उसे तामिल चम्पू से क्यों मिलाएँ? क्योंकि! श्री चटर्जी ने ऐसा करने का नादिरशाही हुक्म सादिर किया है, पहिले हम उसका नाम रुधिर रखे फिर आर्यों के देवता रुधिर से उसे मिला दें। ऐसा हम क्यों करें? इस प्रकार का कोई नियम अभी तक हमारी लोक परिषद् (पार्लियामेंट) ने नहीं बनाया। बना भी दें तो फिर हमें उसके विरुद्ध घोर सत्याग्रह करना होगा। यदि इन महाशय को सर्वसम्मति से लाल बुझक्कड़ शिरोमणि की उपाधि दे दी जाये तो कुछ अनुचित नहीं होगा। यह विचित्र पुस्तक जो देश का लाखों रुपया बर्बाद करके श्री के० एम० मुन्शी ने प्रकाशित करवाई है जिसकी चारों ओर धूम है, हमें तो संदेह है कि कभी चण्डूखाने में भी किसी ने ऐसा असम्बद्ध प्रलाप किया होगा। किन्तु आज इसी का नाम स्कॉलरशिप और ओरिजिनेलिटी है। फिर जब यह पुस्तक देश-देशान्तरों में जायेगी तो लोग वेद के सम्बन्ध में कितने घोर अज्ञान के गड्ढे में गिरेंगे। विदेशी ही क्यों हमारे देश में भी सम्पूर्ण विश्वविद्यालयों में यह पुस्तक बड़े आदर के साथ पढ़ाई जाती है। निस्सन्देह हमें इतना कट्टरवादी नहीं होना चाहिए कि हमारी धर्म पुस्तक पर कोई युक्तिहीन प्रहार करे तो हम उसका उत्तर युक्तियों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से दें। किन्तु हमें इतना आत्मविहीन भी तो नहीं होना चाहिये कि हमारी धर्म पुस्तक का ऐसा युक्तिहीन उपहास विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में पढ़ाया जाये, मेरी सम्मति में आर्य समाज को इसके विरुद्ध घोर आन्दोलन करना चाहिए जिससे इस प्रकार की पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकों का स्थान न पा सकें। इस प्रकार के कपोलकल्पित इतिहासों का परिणाम वह आर्य-द्रविड़ संघर्ष है जो इस समय दक्षिण को विलोड़ित कर रहा है और जिसका दुष्परिणाम न जाने क्या होगा? क्या देश के शासक चेतेंगे? क्या आर्यसमाज के अधिकारी चेतेंगे? क्या आर्यजनता चेतेगी? क्या विश्व मानवता के प्रहरी विश्व ज्ञान के आदिम प्रकाश वेद की सुरक्षा के सम्बन्ध में कुछ प्रयास करेंगे। जिससे इस ज्ञान प्रकाश के द्वारा विश्व का सतत कल्याण होता रहे क्योंकि विश्व के आदिमज्ञान वेद की सुरक्षा का दायित्व विश्व के सभी मनुष्यों का धर्म है। ❖ ❖ ❖

विद्यामार्तण्ड पण्डित बुद्धदेव विद्यालङ्कार (स्वामी समर्पणानन्द जी)

के दो अद्भुत ग्रन्थ

श्रीमद्भगवद्गीता

सामपर्ण भाष्य

महाभारत का युद्ध भारत के इतिहास की एक सच्ची घटना है, कपोल कल्पना नहीं। उस घटना का प्रयोग महाकवि वेदव्यास जी ने मनुष्य को धर्म का सच्चा स्वरूप दिखाने के लिए अपने काव्य में किया है और दैवी सम्पत्ति की सेना के संचालक का स्वरूप योगिराज कृष्ण को दिया है। भाव कृष्ण वार्ष्णेय के, शब्द कृष्ण द्वैपायन के, घटना इतिहास की। *अहो लोकोत्तरः संगमः। (सामपर्ण भाष्य से)*

अज्ञान, अभाव, अन्याय से रहित सभी वादों से निर्विवाद

भारत की संरचना हेतु

कायाकल्प

राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नव निर्माण करने जा रहा है।

मार्क्सवाद, साम्यवाद, समाजवाद, न जाने कितने विदेशी वादों का आक्रमण इस समय हो रहा है।

दूसरी ओर एक नवीन जागृति भी देखने में आ रही है, जो भारत में भारतीयता का साम्राज्य चाहती है।

इस साम्राज्य की स्थापना न केवल चाहने से होगी, न नारों से, इसके लिए आवश्यक है सब वादों का तुलनात्मक अध्ययन तथा भारतीय संस्कृति का युक्तिसंगत स्वरूप जनता के सामने रखना।

यही इस पुस्तक का ध्येय है।

इससे न केवल भारत का अपितु समस्त मानव समाज का कायाकल्प हो, यही लेखक की आशा है, तथा प्रभु से प्रार्थना है।

भारतीय संस्कृति का युक्ति संगत स्वरूप इस पुस्तक में देखिये।

लेखक द्वारा जिस समय पुस्तक लिखी गई उपरोक्त समीक्षा उस समय की है।

ऐसे थे स्वामी समर्पणानन्द

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी

◆ स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज अद्भुत प्रतिभा एवं लोकोत्तर पाण्डित्य के धनी थे। वे आशुकवि भी थे।

श्री हरिहरानन्द करपात्री स्वामी (काशी)
(श्री करपात्री जी महाराज)
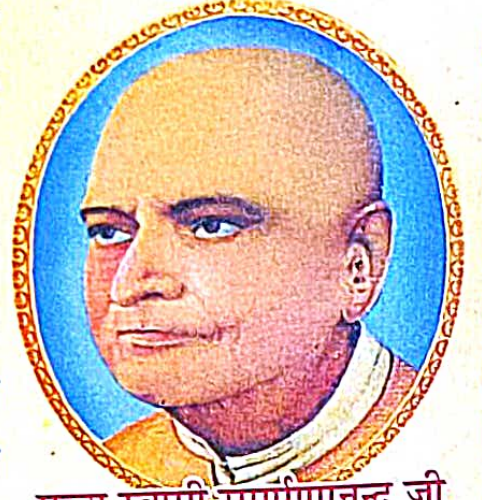
◆ धरती तल पर वेद विषय में पं० बुद्धदेव जी (स्वामी समर्पणानन्द) जैसी सूझ किसी की नहीं। **पं० भगवद्दत्त,** रिसर्च स्कॉलर

◆ स्वामी जी की प्रतिभा के प्रकाश में वैदिक ज्ञान का कोई भी स्थल अप्रकाशित नहीं था। वे वेद के अनुपमेय विद्वान् थे।

पं० हरिदत्त शास्त्री त्रयोदशतीर्थ (कानपुर)

◆ स्वामी समर्पणानन्द जी जैसे वेदज्ञ को जन्म देकर यह धरा धन्य हो गयी। **आर्य नेता – पं० प्रकाशवीर शास्त्री**

◆ पण्डित जी की प्रतिभा में बाणभट्ट, भवभूति, कालिदास के एक साथ दर्शन होते थे। वे शतपथ ब्राह्मण एवं वैदिक ज्ञान के तो अद्भुत व्याख्याता थे। **आचार्य प्रियव्रत**

कुलपति – गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय

◆ उनकी वेद निष्ठा श्रद्धेय थी वे प्रायः कहा करते थे –
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न त्यजेत् वेदमन्दिरम्।

परमहंस स्वामी वामदेव जी महाराज

◆ उनका तलस्पर्शी वैदिक ज्ञान प्राचीन ऋषियों का स्मरण दिलाता है।

पं० नरेन्द्र (हैदराबाद)

◆ अस्मिन् युगे नूनं स्वामी समर्पणानन्दमहाभागा एव वेदभाष्यकरणे सक्षमा आसन्। **मण्डन मिश्र** (पूर्व कुलपति)

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय एवं
श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठम्।

प्रकाशक : **स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान**, गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ–250501